श्रीश्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति

रचयिता

प्रभुपाद श्रीहरिदास गोस्वामी

हिन्दी पद्यानुवादक

श्रीमाधवशरण एम. ए., एल–एल. बी.

प्रकाशक

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवासंघ, मथुरा-२८१००१

दीपावली,
सं० २०३३ वि०

न्योछावर
भाव पूर्वक पाठ

❀ जय गौर ❀

श्रीश्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति

[देवनागरी लिपिमें मूल बंगला,
हिन्दी पद्यानुवाद सहित]

रचयिता

प्रभुपाद श्रीहरिदास गोस्वामी

हिन्दी पद्यानुवादक

श्री माधवशरण एम. ए., एल. एल. बी.

इस पुस्तकको **सम्पूर्ण अथवा** इसके किसी अंशको
भी प्रकाशित करने, उद्धृत करने या किसी
भी भाषामें अनुदित करने का
अधिकार सबको है।

प्रकाशक

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवासंघ, मथुरा (उत्तरप्रदेश)

व्रजेर खेला छिल दौड़ादौड़ि ।

नदेर खेला धूलाय गड़ागड़ि ॥

व्रजेर खेला छिल वांशीर गान ।

नदेर खेला केवल हरिनाम ॥

व्रजेर खेला छिल वन भ्रमण ।

नदेर खेला ए-बार केवल रोदन ॥

व्रजका खेल कुलेल-मगन-मन ।
नदियाका रज-लुण्ठित-तन ॥
व्रजका खेल मुरलिका-वादन ।
नदियाका हरिनाम-भजन ॥
व्रजका खेल कुसुम-वन-विहरण ।
नदियाका दृगजल-वर्षण ॥

प्रकाशकीय निवेदन

भारतीय साहित्य-परम्परामें बङ्ग-साहित्यका एक विशिष्ट स्थान है। दैवकी कृपासे बङ्ग प्रदेशकी भाव-प्रवण भूमिपर आत्मरञ्जिनी रस-धाराका प्रवाह प्रायः निरन्तर ही गतिमान् रहा है, जिसने बङ्ग-साहित्यको सदैव ही अनुप्राणित किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ 'श्रीश्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' भी उसी रस-धारासे उद्भूत करुण–रस-प्रधान एक भावपूर्ण रचना है, जिसकी अवतारणा परम सम्मान्य गोलोकगत श्रीहरिदासजी गोस्वामी महाराज द्वारा बङ्गला भाषामें आजसे लगभग ६०–६१ वर्ष पूर्व गौराब्द ४२९ में श्रीधाम वृन्दावनमें हुई थी तथा उन्हींके द्वारा वृन्दावनसे ही इसका प्रथम प्रकाशन भी सम्पन्न हुआ था। श्रीपाद हरिदासजी एक सिद्धहस्त रस-ममंज्ञ लेखक थे। उनके द्वारा वैष्णव साहित्यकी जो सेवा हुई वह चिरस्मरणीय रहेगी। उनका जीवन बड़ा ही प्रेरणाप्रद है। ग्रन्थके आदिमें दिये हुए लेखकके वक्तव्य इत्यादिसे यह स्पष्ट है कि इस ग्रन्थको पाठकोंका पर्याप्त स्नेह मिला।

इस ग्रन्थमें बङ्गालमें अवतरित श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके गृह त्यागकर संन्यासी हो जानेपर उनकी निजात्मरूपी अर्धाङ्गिनी श्रीविष्णुप्रियाके अमन्द विरहोद्गारोंका बड़ा ही अद्वितीय एवं मार्मिक वर्णन है, जिनको पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है मानो विश्व-प्रकृतिने अपने सहज-स्वामीके वियोगमें हाहाकार किया हो। जगत्के तापोंको गलानेवाली करुणाकी जो अनूठी अभिव्यञ्जना इसमें हुई है, उसका उदारहण अन्यत्र दुर्लभ है। भावुक-अभावुक, भक्त-अभक्त, सभीको बिना किसी भेदके यह अभिभूत करनेमें समर्थ है। समकालीन पत्रोंमें प्रकाशित इस ग्रन्थकी प्रारम्भिक समालोचनासे इसके पाठकों पर हुई गम्भीर प्रतिक्रियाका पता चलता है। अनेक पाठकोंको तो इस ग्रन्थके पढ़नेसे करुण-रसकी नितान्त अद्भुत अनुभूति हुई थी तथा उनमेंसे कई महानुभावोंने इस ग्रन्थके रचयिताको ऐसी मर्मभेदी वेदनाके चित्रणके लिए उपालम्भ देते हुए निर्मम और निर्दयी तककी उपाधिसे विभूषित किया था।

ऐसी भावपूर्ण एवं उत्कृष्ट रचनाको नागरी लिपिमें उसका लिप्यन्तरण करके हिन्दी पद्यानुवाद सहित हिन्दीभाषी गौर-प्रेमियों और हिन्दी-साहित्य-सेवियोंके रसास्वादनके लिए उपलब्ध करानेकी प्रेरणा और साधन हमें एक सम्मान्य बन्धुसे प्राप्त हुई, जो शीलवश अनामी रहनेमें ही सुख अनुभव करते हैं। उन्हींकी प्रेरणाके फलस्वरुप यह पुस्तक इस रुपमें आपके समक्ष है।

देवनागरी लिपिमें इसका १००० प्रतियोंका प्रथम संस्करण फाल्गून पूर्णिमा विक्रम सवत् २०१८, आर्यावर्त्त प्रकाशन गृह, १० चौरंगी रोड, कलकत्ता-१३ से प्रकाशित हुआ था जो लगभग एक साल में पूरा हो गया। १००० प्रतियोंका दूसरा संस्करण भी लगभग १५ महीनेके बाद श्रीजगन्नाथ रथयात्रा आषाढ़ शुक्ला द्वितीया वि० संवत् २०२०, को प्रकाशित हुआ था, इसका तीसरा संस्करण १०००

प्रकाशकीय निवेदन

प्रतियोंका बसन्त पञ्चमी वि० संवत् २०२४ को हुआ था। अब इसका चौथा संस्करण १००० प्रतियों का हो रहा है। पद्यानुवादकर्ताने मूल बङ्गला गीतोंका भाव ठीक लानेके लिए हिन्दी पद्यानुवादमें अनेक संशोधन किये हैं। आशा है पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे।

गुरुपूर्णिमा वि० सं० २०३३
शकाब्द १८९८, बङ्गाब्द १३८३
गोराब्द ४९०
११ जुलाई १९७६

विनीत—
प्रकाशक

प्रस्तुत ग्रन्थकी तत्कालीन समालोचनाएँ

(१)

सुप्रसिद्ध 'श्रीविष्णुप्रिया' पत्रिकामें 'विष्णुप्रिया-विलाप-गीति' के विषयमें प्रकाशित समालोचना—

"इस ग्रन्थका आकार छोटा होते हुए भी इसमें निहित भाव अत्यन्त मधुर तथा उनकी झंकार विश्व-व्यापी है। बङ्गला भाषामें अबतक बहुतसी कविता-की पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, लेकिन उनमेंसे अधिकतर काव्यके लक्षणोंसे वर्जित है। 'श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' को एक प्रकारसे वास्तविक काव्य कह सकते हैं,—करुण रस इस काव्यका प्राण है। चण्डीदास, विद्यापति आदिकी पदावली भी पढ़ी—विरहविधुरा श्रीराधाका विलाप पढ़ा, लेकिन इस 'श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' को पढ़कर तो मनको ऐसा लगा मानो स्वयं सरस्वती महारानीके हाथसे जो वीणा बजी है, उसकी ही यह करुण झंकृति हो। विलापके इस मर्मभेदी आर्तनादके अन्तरमें मानो

विश्वके प्राणोंका हाहाकार एकरस हो गया है, इस विरहाग्निके तप्त श्वासोंमें विश्वके तप्त प्राणोंका दीर्घश्वास जैसे मिश्रित हो गया है. इसलिए भक्त हो या अभक्त, भावुक हो या भजन-विमुख, जो कोई भी इस विलाप-ध्वनिको सुनेगा, वही द्रवित हो जायेगा। इस विलापसे हृदय द्रवित हो जाता है, नयनोंसे प्रेमश्रु- धारा वह चलती है, कठिन प्राण भी पिघल जाते हैं और मलिन चित्त निर्मल हो जाता है—इस करुण विलापका प्रभाव ही ऐसा है। ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व-वासियोंको अपने प्रभावसे आकर्षित करके श्रीमान् महाप्रभुके भजन-साधनकी शिक्षा देनेके लिए ही श्रीविष्णुप्रियाका यह आर्त्तनाद उदित हुआ था। देशके आबाल-वृद्ध-वनिताओंसे इस 'विष्णुप्रिया-विलाप-गीति' का एक बार पाठमात्र करनेके लिए अनुनय-सहित मैं अनुरोध करता हूँ।

(२)

गोलोकगत महात्मा शिशिरकुमार घोषकी परम विदुषी गौराङ्गगतप्राणा भगिनीका मन्तव्य—

'श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' का पाठ करनेसे ऐसा बोध हुआ मानो **प्रियाजीने स्वयं आपमें प्रवेश करके ही यह विलाप–कहानी लिखी है,** नहीं तो यह इतनी सुन्दर और मर्मस्पर्शी नहीं होती ।

(३)

बङ्गीय साहित्य परिषद्के सहकारी सम्पादक श्रीयुत मृणालकान्ति घोषका मन्तव्य—

'श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीत' का पाठ करते-करते मैं प्रेमविह्वल हो गया । आज यदि बड़े काका (शिशिरबाबू) इस जगतमें होते तो इसका पाठ करते हुए कितने आनन्दाश्रु बहाते, यह कहना कठिन है ।

(४)

परम गौर-भक्त श्रीयुत रञ्जनविलास राय चौधरीका मत—

'श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' में रचयिताने श्री-विष्णुप्रियादेवीकी एक अभिनव-छवि दिखलायी है। इसकी कल्पना जितनी सुन्दर है, वर्णन भी उतना ही मधुर है। देवीके आत्मत्याग का ज्वलन्त दृष्टान्त इस छोटेसे कविताग्रन्थमें मर्मभेदी भाषामें दर्शाया गया है।

(५)

एक ऊँचे पद पर आसीन अंग्रेजी-शिक्षित विशिष्ट राजकर्मचारीने (जिनका नाम प्रकाशमें नहीं लाया गया) ग्रन्थकारको लिखा था—

आपका ग्रन्थ पढ़कर मेरी पत्नी तीन दिनों तक लगातार रोते-रोते मूर्च्छा रोगसे ग्रसित हो गयी है और मूर्छावस्थामें प्रलाप-वाक्य बोलती रहती है—'हा गौराङ्ग ! तुम बड़े निठुर हो ! तुमको दयामय कौन

कहता है ? तुमने बालिका विष्णुप्रियाको जो दुःख दिया है, उसके लिए तुमको बड़ा ही दुःख पाना होगा।' आपका ग्रन्थ पढ़नेसे मेरी पत्नीकी यह दुरवस्था हो गयी है—यदि उसको कुछ हो गया तो इसके उत्तरदायी आप होंगे।"

(प्रसन्नताकी बात यह है कि उस भक्तिमति महिलाको कुछ नहीं हुआ। वह श्रीगौराङ्गके चरणोंका आश्रय लेकर परम आनन्दके साथश्रीगौर-विष्णुप्रिया युगलरूपका भजन करती रहीं।—ग्रन्थकार)

(६)

श्रीयुत विधुभूषण शास्त्री, वेदान्त-भूषण, भक्तिरञ्जन महोदयने ग्रन्थकारको लिखा था—

'देव ! आपकी श्रीमूर्ति तो बड़ी सुन्दर है, किन्तु हृदय इतना कठोर क्यों ? कवियोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि उन्हें स्त्रियोंको कष्ट देना अच्छा लगता है। प्रमाणमें—आदि कवि वाल्मीकिने सीता

देवीको, व्यासदेवने द्रौपदी और उत्तराको कितने कष्ट दिये हैं ? हमारे देशमें ही ऐसा हो—यह बात नहीं है, पाश्चात्य कवियोंका भी ऐसा ही स्वभाव है। शेक्सपीयरने जूलिएटको और इसके भी पूर्व होमरने हेलेनको दुःख दिया था। आपने श्रीमती विष्णुप्रिया देवीको कितना अपार कष्ट दिया है ! मैं तो आपके सम्पूर्ण ग्रन्थको पढ़ भी नहीं सका, अश्रु-जलसे वक्ष तक भीग गया। आपके कुसुम-कोमल हृदयमें ऐसे हृदय-विदारक भाव आ ही नहीं सकते। निश्चय ही यह उन्हीं निज-जन-निष्ठुर महाप्रभुजीका काम है। उन्होंने आपके द्वारा ऐसा ग्रन्थ लिखवाया है। उन्होंने निश्चय ही आपका ज्ञान हर लिया था। आपकी सूक्ष्म देह उस समय वहाँ नहीं थी। धन्य है आपकी लेखन-शैली ! इस शैलीके सामने तो रवि बाबूकी लेखन-कला भी फीकी सी लगती है।'

(७)

स्वनामधन्यश्रीरामदास बाबाजीके शिष्य श्रीयुत जितेन्द्रनाथ घोषालने जो सुदूर ब्रह्मदेश रंगूनमें केलनर कम्पनीके रेलवे होटलके मैनेजर थे, तारीख नवीं कार्तिक १३२८ बंगाब्दके पत्रमें रचयिताको लिखा था—

आपकी विष्णुप्रिया-विलाप-गीति अभी शेष नहीं कर सका—आज २७ दिन हो गये आपकी पुस्तक मिले। प्रति दिन एक गीत पढ़ लेनेसे भरपूर हो जाता हू, सारे दिन-रातके भीतर दूसरा गीत पढ़नेकी शक्ति नहीं रहती। आपका प्रत्येक पद इतना मधुर है कि उसकी मिष्ठता सारे दिन-रातमें भी दूर नहीं हो पाती। प्रातःकाल एक गीत पाठ करते ही अश्रुप्रवाह आरम्भ हो जाता है और सारे दिन-रातमें जब-जब भी उसकी याद आती है तभी आँखोंमें जल रोका नहीं जाता। एक दिन दफ्तरमें बैठे-बैठे हठात् —

'जे घरे शुहते तुमिकेउ खोलेनि।
विछाना, वालिस, खाट, केउ तोलेनि॥

ये दो पंक्तियां याद आते ही न मालूम क्या हुआ चीत्कार करकर बुरी तरहसे रो पड़ा और साहबके पास कुछ भी नहीं कह सका। २७ दिनोंमें केवल यहां तक पढ़ पाया हूँ, पता नहीं कब पूरी पुस्तक शेष कर सकूँगा।

(८)

श्रीविधुभूषण सरकार बी० ए०, फेणी, ब्राह्मण-बेड़िया प्रभृति नाना स्थानोंके उच्च अंग्रेजी विद्यालयोंके हेडमास्टरने 'विष्णुप्रिया-विलाप-गीति' पढ़कर, अपने कोमल हृदयमें व्यथा पाकर, त्रिपुरा जिलाके त्रिश गांवके वसन्त साधुको 'विष्णुप्रिया-विलाप-गीति' के रचयिताको सान्त्वना देनेके लिए एक पद्य लिखा था—

'विष्णुप्रिया काङ्गालिनी ? के बले ए कथा ।
असम्भव ! मिथ्या बलि केन देय व्यथा ॥
बलो से भूपालवासी हरिदासियारे ।
राजराजेश्वरी तिनि विपुल संसारे ॥

❀ ❀ ❀

बलिओ आमार ह'ये आमि जे अबला ।
से हरिदासिया जेन ना हय विह्वला ॥
बलिओ बुझाये तारे अति धीरे-धीरे ।
से जेन काँदे ना आर सदा अश्रुनीरे ॥

❀ ❀ ❀

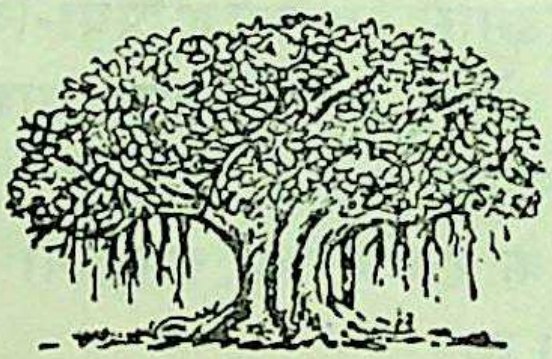

॥ श्रीश्रीविष्णुप्रिया-वल्लभाय नमः ॥

उत्सर्ग-पत्र

श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-युगल-भजन-निष्ठ
श्रीश्रीविष्णुप्रिया-परिवारके
श्रीमान् नृत्यगोपाल गोस्वामीके प्रति

प्राणोंके निताई !

मेरे लिखे 'श्रीश्रीविष्णुप्रिया-चरित' का पाठ करके तुमने मुझको लिखा था —

"तुमने यह क्या किया ? यही क्या तुम्हारा 'श्रीविष्णुप्रिया-चरित' है ? नहीं, नहीं, तुम भूलते हो। यह तो भक्तप्राणके लिए कालाग्नि है—इसे क्या पढ़ा जा सकता है ? क्या इसके पढ़ने पर प्राण टिक सकते हैं ? यह कभी भी तुम्हारा लिखा नहीं है। मैं तुमको बाल्यकालसे ही जानता हूँ, तुम्हारी तो सर्वदा ही कुसुमके समान कोमल प्रकृति रही है। तुम्हारे कुसुम-कोमल हृदयसे इस प्रकारकी हृदय-विदारक ज्वालामयी भाषाका उदय कभी भी सम्भव नहीं। कुसुममें वज्रता, जलमें दाहिका शक्ति, भक्तमें क्षमाहीनता यदि सम्भव हो, तभी समझ सकता हूँ कि यह 'श्रीविष्णुप्रिया-चरित' भी तुम्हारा लिखा

है। यह श्रीग्रन्थ भक्तोंके लिए है ही नहीं, भक्त इसे कभी भी पढ़ नहीं सकेंगे, पढ़नेपर उनके प्राण टिकेंगे नहीं। तुम्हारे इस ग्रंथकी विशेषता, लेखनकी भाषा और भावके समन्वय गुणसे लिखित विषयकी पंक्ति पंक्ति और अक्षर-अक्षरमें एक कैसी अद्भुत उन्मादिनी शक्तिका समावेश हुआ है जिसके पठन और श्रवण मात्रसे पाषाण-प्राण भी पिघल जाते हैं! तुम्हारे द्वारा जो असम्भव है, वही सम्भव हो गया है। **जो असम्भव को सम्भव कर सकते हैं, वे ही इसके कर्त्ता हैं। तुम तो केवल निमित्त-मात्र हो तुमको हिप्नोटाइज़** (Hypnotise) **अर्थात् चेतना-हीन करके यह कार्य कराया गया है।** मैं दृढ़ताके साथ कह सकता हूँ कि चेतनावस्थामें यह लिखते तो तुम कभी बच नहीं सकते थे,—तुम्हारे कोमल प्राण जलकर भस्म हो जाते। जो भी हो, भला मुझ जैसे पाखण्डीके पाषाण-हृदयको द्रवित करनेवाली औषधि का तो सृजन हो गया।"

मेरा उत्तर— 'भाई निताई! मालूम होता है, तुम्हारे मनके भावोंको जानकर मेरे सगे भाईसे भी

अधिक गौराङ्गगत-जीवन श्रीमान् नगेन्द्रनाथ लाहिड़ी, बी० एल० वकीलने मुझे लिखा है—

"एक विचार मनमें उठ रहा है जिसे आपसे कहे बिना नहीं रहा जाता। वह यह है—मैं सोचकर भी यह निश्चय नहीं कर पा रहा हू कि आपने कैसे 'श्रीविष्णुप्रिया चरित' लिखा। मैं इस श्रीग्रन्थके सारे स्थल नहीं पढ़ सकता, कारण कि मेरेमें यह शक्ति नहीं है। इस श्रीग्रन्थके पढ़नेके लिए अत्यधिक शक्तिकी आवश्यकता है। महादेवजीने पार्वतीजीसे कहा था कि समस्त ब्रह्माण्डका जितना भी सुख-दुःख है, यदि वह सब एकत्रित कर दिया जाय तो भी वह श्रीमती राधाजीके सुख और दुःखके एक कणके समान भी नहीं हो सकता।* आपके

---

*लोकातीतमजाण्डकोटिगमपि त्रैकालिकं यत्सुखं,
दुःखञ्चेति पृथग्यदि स्फुटमुभे ते गच्छतः कूटताम्।
नैवाभासतुलां शिवे! तदपि तत्कूटद्वयं राधिका,
प्रेमोद्यत् सुखदुःखसिन्धु- भवयोर्बिन्देन विन्दोरपि॥
उज्जवलनीलमणि १४.१७१

श्रीग्रन्थको पढ़ कर मुझे उसी बात का स्मरण हो आया। आपके हृदयमें आनन्द प्राप्त करनेकी शक्ति जितनी अधिक है, उतनी ही अधिक दुखः सहन करनेकी सामर्थ्य भी है। मैं क्षुद्र-प्राण हूँ, मेरी क्षुद्र शक्तिसे इस श्रीग्रन्थका पाठ सम्भव नहीं।"

मैं कहता हूँ—

"मेरा हृदय पत्थरकी अपेक्षा भी कठिन है, वज्रका बना है, मैं निर्मम हूँ, निर्दय हूँ, नहीं तो यह सब पाषाण-भेदी, हृदय-विदारक करुण-ध्वनि-पूर्ण प्रियाजीका आर्त्तनाद विस्तार करकर कैसे लिख पाता ? यह समस्त दुःख कथा—यह सारी मन-की व्यथा लिखनेको बैठते हुए मेरे प्राण विदीर्ण क्यों नहीं हो गये ? मेरे प्राण बड़े कठोर हैं—हृदय वज्र है, इसको और बतानेकी आवश्यकता नहीं।"

'श्रीश्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' श्रीग्रन्थमें चौदह वर्षकी बालिका प्रियाजीके श्रीमुखसे हृदय-विदारक, भीषण विलाप ध्वनि सुनकर तुम मुझे और क्या कहोगे,—मैं यह सुनना चाहता हूँ। मेरे पापोंका प्रायश्चित पूर्ण होना आवश्यक है।

इसीलिए यह श्रीग्रन्थ तुम्हारे करकमलोंमें अर्पण करके पापोंके प्रायश्चितके फलकी आशामें बैठा हूँ, तुम प्रियाजी के निज जन हो, श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र तुम्हारे घरके बालक हैं, तुम लोग उनको जो चाहो कह सकते हो। श्रीप्रियाजीकी करुण विलाप-कथा श्रीश्रीविष्णुप्रियाबल्लभको सुनानेके लिए तुम ही उपयुक्त पात्र हो। कृपा करके यह कार्य कर दोगे क्या ? कठोर हृदयकी निर्ममताके लिए मुझे सौ बार गाली दो, उसके लिए मेरा कोई आक्षेप नहीं है। किन्तु बात तो ध्रुव सत्य है, प्रियाजीकी दुःख-कथा अत्यन्त मर्मस्पर्शिणि है, इसको तो स्वीकार करना ही होगा। सत्य कथा सदा ही अप्रिय लगती है, ऐसा होता ही आया है। फिर सच्ची बात कहने में भय क्या ! अपने उस **'निर्लज्ज निमाई'** को यह सच्ची बात क्या तुम नहीं सुना सकोगे ?''

प्रियाजी-दुःख-कातर
तुम्हारा हतभाग्य,
दीनहीन हरिदास

श्रीधाम वृन्दावन,
१ अश्विन, गौराब्द ४२९।

मङ्गलाचरण

(मूल बङ्गला)

गौर-वक्ष-विलासिनी अयि विष्णुप्रिये !
कलिर जीवेर प्रति देख मा चाहिये ॥
नित्य हाहाकारे तारा कातर अन्तर ।
त्रिताप ज्वालाय दग्ध क्लिष्ट-कलेवर ॥
मलिन मनेर भाव, कठिन हृदय ।
केमने हइबे ताहे गौर-प्रेमोदय ॥
तुमि मा करुणामयी पतितपावनी ।
कलिर कलुष-हरा राङ्गा पा दु'खानि ॥
तोमार चरण विना नाहि आन् गति ।
कृपा करि कलिजीवे दाओ मा सुमति ॥
प्रकृति भजन पथ दिया देखाइया ।
भक्तिहीन सन्तानेर शुद्ध कर हिया ॥

शेष पृष्ठ २४ पर

मङ्गलाचरण

(हिन्दी अनुवाद)

हे गौर-वक्ष-विलासिनी ! हे देवि ! हे विष्णुप्रिये !
कलिकालके इन प्राणियोंकी ओर मां ! दृग फेरिये ।।
नित्य हाहाकारसे हो रहा अन्तःकरण कातर ।
दग्ध ज्वालामें त्रितापोंके कलेवर क्लेश-जर्जर ।।
मलिन मनकी भावनाएँ हृदय प्रस्तर-सा कठिन अति ।
प्रेमका होगा उदय किस भाँति उसमें गौरके प्रति ।।
पतित-पावनकारिणी मां ! मूर्ति तू करुणा विनिर्मित ।
कलि-कलुष-हारी तुम्हारे चरण दोनों राग-रिञ्जत ।।
सिवा चरणोंके तुम्हारे नहीं कोई दूसरी गति ।
कृपाकर कलिजनोंको माँ ! दीजिये मङ्गलमयी मति ।।
सहज स्वाभाविक भजनके राजपथका कर प्रदर्शन ।
शुद्ध करदो हृदय संततिका न जिनके भक्तिका धन ।।

(शेष पृष्ठ २५ पर)

(पृष्ठ २२ से)

कलिर जीवेर हृदे नाहि प्रेम-गन्ध ।
प्रेमभक्ति शून्य तारा तार्किक भ्रमान्ध ।।
कलिर अधम जीव ना चिनि तोमारे ।
भासितेछे अविरत दुःखेर पाथारे ।।
शान्तिमयी तुमि मागो शान्ति दाओ मने ।
अधम सन्तानि वलि राख गो चरणे ।।
दूर करि' भ्रम-तम, दाओ प्रेम भक्ति ।
शक्तिरूपी कृपामयी ! सञ्चारह शक्ति ।।
गौराङ्ग-भजन पथे तुमि मा आश्रय ।
तोमार चरण-चिन्ता सुखेर आलय ।।
कातर कलिर जीवे कर मा करुणा ।
आन् नाहि जाने 'हरि' तव पद विना ।।

(पृष्ठ २३ से)

प्रेम-सौरभ नहीं कलिके प्राणियोंके हृदय भीतर।
वे कुतर्की, प्रेम भक्ति-विहीन, भ्रम-पट लोचनों पर॥
कलिकालके प्राणी अधम तुमको नहीं पहचान कर।।
दुःख-पारावारमें हैं डूबते रहते निरन्तर॥
शान्तिकी तुम मूर्ति माता !शान्ति-रस मन-कलश ढालो
जान कर सन्तानको निज अधम, चरणों में बसा लो॥
दूर कर भ्रमका अंधेरा प्रेमभक्ति प्रदान कर दो।
शक्ति-रूपिणि!कृपा-प्रतिमे!कृपा करके शक्तिभर दो।
गौरहरिके भजन-पथमे एक मां! तेरा सहारा॥
सकल-सुख-भण्डार अम्बे!बस चरण-चिन्तन तुम्हारा।
जननि!कलिके जीव कातर उपरि करुणा-घटा बरसे।
बिना तव पदके नहीं 'हरिदास' का नाता अपरसे॥

श्रीश्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति

(बंगला मूल)

(१)

कोथा तुमि गेले नाथ ! नदीया छाड़ि' ?
शून्य हेरि तोमा' विना ए घर वाड़ी ॥
जे दिके फिराइ आँखि,
गौरहारा धरा देखि,
पशु पाखी सकलेरि नयने वारि ।
वृक्षलता तृण काँदे,
ना हेरि नदेर चाँदे,
फुकारि फुकारि काँदे कुलेर नारी ॥
शिशुते ना स्तन खाय,
गाभीते ना गोठे जाय,
उठेछे रोदन-ध्वनि हृदि-विदारी ।
केन तुमि गेले नाथ ! नदीया छाड़ि' ?

श्रीश्री विष्णुप्रिया-विलाप-गीति

[हिन्दी पद्यानुवाद]

(१)

नदियाको तुम नाथ ! छोड़कर कहाँ सिधारे ?
सब सूना यह घर-द्वार दीखता बिना तुम्हारे ।।
दृष्टि जिधर भी ले जाती हूँ,
गौर-विहीन मही पाती हूँ,
विकल सकल पशु-पक्षि-वृन्द भी आँसू ढारे ।
वृक्ष-लता-तृण करते क्रन्दन,
न कर प्राप्त नदिया-विधु-दर्शन
फूट-फूट कर कुल-ललना घरमें चिक्कारे ।।
स्तनमें शिशु-गण मुँह न लगायें,
नहीं गोठमें जातीं गायें,
रही रुदन-ध्वनि ऐसी उठ जो हृदय विदारे ।
नदियाको तुम नाथ ! छोड़ किस लिए सिधारे ?

(२)

कि दुख पाइया तुमि नदे' छाड़िले ?
से कथा खुलिया मोरे नाहि बलिले ॥
लोके बले कत कथा,
ता'ते पाइ मने व्यथा,
नारीर मरम-व्यथा नाहि बुझिले ।
ना बलिया च'ले गेले,
अभागी दासीरे फेले,
दया माया भालबासा सब भुलिले ॥
नदीयार सुख भुलि,
कोथाय गेले हे चलि,
साधेर संसार-सुखे बाद साधिले ।
कि दुख पाइया तुमि नदे' छाड़िले ?

[२]

कौन दुःख पा त्याग दिया तुमने नदियाको ?
खोल कही वह बात न दासी विष्णुप्रियाको ।।

जगती नाना बात बनाती,
सुन-सुन जिनको फटती छाती,
समझ न पाये तुम अबलाकी मर्म-व्यथाको !

चले गये कुछ न गये कह पर,
परिचारिका अभागिन तज कर,
भूल गये तुम प्रीति-रीत सब दया-मयाको ।।

नदियाके सुखको बिसराकर,
चले गये हे ! कहो कहां पर,
चले ढहा मनचाहे भव सुख-मय कुटियाको ।
कौन दुःख पा त्याग दिया तुमने नदियाको ?

(३)

किवा अपराध ह'ल चरणे तव ?
के बुझाये दिबे मोरे' काहारे क'व ?
दण्डे दण्डे तिले तिले,
अपराधी पदतले,
तोमार मनेर मत कि क'रे ह'ब ?
निज गुणे ल'येछिले,
तवे केन फेले' गेले,
मने मने ए यातना कत वा स'व ?
पदसेवा योग्या नहि,
ताइ जे सरमे रहि,
मरम वेदना कत नित्य नव ?
किवा अपराध ह'ल चरणे तव ?

(२)

बना कौन अपराध चरण-प्रति, जान सकूँगी ?
कौन मुझे समझाये, मैं भी किसे कहूँगी ?
घड़ी-घड़ी प्रति क्षण–क्षण पल–पल,
अपराधिन मैं पड़ी चरण–तल,
मनोऽनुसार तुम्हारे मैं किस भाँति बनूँगी ?
थे अपने गुणसे अपनाये,
फिर क्यों मुझको छोड़ सिधाये,
कितनी मन-ही-मन यातना कठोर सहूँगी ?
योग्य नहीं पदकी सेवाके,
रही बीच धँस इस लज्जाके,
मर्मवेदना कितनी नित्य नयी झेलूँगी ?
बना कौन अपराध चरण-प्रति, जान सकूँगी ?

(४)

दगध कपाल मोर अभागी आमि ।
ता' ना ह'ले केन नाथ ! छाड़िबे तुमि ?
आमार कपाल भाङ्गा,
ना पेनु चरण राङ्गा,
सेविते जनमावधि' प्राणेर स्वामी ।
पेये धन हारा'लाम,
के राखे नारीर मान,
ताइ भावि काँदि आमि दिवस यामि ॥
कि जानि कि मने करि,
दुःख दिले हृदि भरि,
जनम दुखिनि क'रे राखिले तुमि ।
दगध कपाल मोर अभागी आमि ॥

(४)

मेरा भाग्य भस्मचय निश्चय मैं अभागिनी ।
नहीं भला, क्यों तुम तज देते निजार्द्धाङ्गिनी ?
पड़ी भाग्यमें दीर्घ दरारें,
मिली-अरुण-पदकी न तुम्हारे
प्राणपति ! सेवा जीवन-अवधि-व्यापिनी ।
जब न मिला धन रहा सँभाले,
कौन मान अबलाका पाले,
यही विचार बिलखती रहती दिवस-यामिनी ।
क्या जाने क्या मनमें ठाना,
दुःख दिया मुझको मनमाना,
बैठा गये हृदय जन्मावधि दुःख-नागिनी ।
मेरा भाग्य भस्मचस्य निश्चय मैं अभामिनी ।।

(५)

वृद्धा जननी तव मरे काँदिया ।
ताँर दुःख देखि मोर विदरे हिया ॥
(ताँरे) बुझा'वार किछु नाइ,
मुखे शुधु 'हा निमाइ' !
पागलिनि मत छोटे सारा नदीया ।
हेरिया पराण ज्वले,
निज दुःख जाइ भूले,
(विधि) गठिल कि तव हृदि पाषाण दिया ?
बूझिले ना मा'र दुःख,
हृदि-ज्वाला भरा धुक,
नदीयार लोक सव करिछे' छिया ।
वृद्धा जननी तव मरे काँदिया ॥

(५)

प्राण दे रही वृद्धा जननी तव क्रन्दन कर।
फटता मेरा हृदय, दुःख वह अवलोकन कर॥

नहीं बँधानेको कुछ ढाढ़स,
'हाय निमाई रे!' मुखमें बस,
उन्मत्ता-सी नदिया भरमें खाती चक्कर।

देख प्राण लगते हैं तपने,
याद नहीं आते दुःख अपने,
सच क्या विधिने गढ़ा हृदय तव लेकर पत्थर?

माँका भी दुःख न समझ सके,
प्रज्वलित हृदय, उरमें धधके,
छी-छी-छी कर रहे सभी जन हैं नदिया भर।
प्राण दे रहीं वृद्धा जननी तव क्रन्दन कर॥

(६)

कत दिन जीवे माता तव विरहे ?
ए वृद्ध वयसे दुख कत वा सहे ?
चिते यदि छिल आश,
भाङ्गिते नदेर वास,
दु'चारि वरष केन र'ले ना गेहे ?
जीवनान्त हले मा'र
जाइत माथार भार,
जा' खुसी करिते तुमि', के तोमा कहे,
मुख चेये जननीर,
वहे मोर आंखि नीर,
तोमार विरह आमि पासरि देहे ।
कत दिन जीवे माता तव विरहे ?

(६)

कितने दिन ले विरहका मां जीयेंगी भार?
ज़रा-जीर्ण तन सहेगा कब तक दुःख अपार?
थी यही हृदय लालसा अगर,
देना उजाड़ नदियाका घर,
तो क्या सकते थे नहीं ठहर बरस दो-चार?
माँकी छाया उठ जाने पर,
जाता मस्तकसे भार उतर,
कौन रोकता तब तुम्हें, करते रुचि अनुसार॥
माँके मुखकी ओर देख कर,
आँखोंसे जल बहता झर-झर,
मैं भूलूँ तव विरह-दुख, उनकी दशा निहार।
कितने दिन ले विरहका माँ जीयेंगी भार?

(७)

जननीके दुख दिये धरम ह'बे
ए विधि के दिले तोमा,— एविश्व भवे ?
हारानिधि छिले मा'र
गेछे ताँर पानाहार,
पुत्र ह'ये तुमि ताँर पराण ल'बे ।
ए बड़ धरम तव,
आमि आर किवा क'व,
तुमिइ विचार करि,—देखह भेवे' ॥
जीवने ना दिले सुख,
दुखिनी मानता मुख—
मरिलेओ देखिवे ना,— लोके कि क'वे ?
जननीके दुख दिये धरम ह'वे ?

(७)

धर्म-विटप—माँको देनेसे दुःख, फलेगा।
किसने दिया विधान, जगतमें कौन कहेगा?
थे जगमें माँके खोये धन,
छूटा है उनका पान-अशन,
सुत करसे क्या जननी-जीवन दीप बुझेगा?
गुरु धर्म तुम्हारा यही अगर
मैं कहूँ कौन फिर बात अपर,
तुम्हीं विचारो-सोचो—क्या यह शोभा देगा?
जीते जी तो नहीं दिया सुख,
बेचारी दुखिया माँका मुख
लखोगे न मरने पर भी क्या जगत कहेगा?
धर्म-विटप—माँको देनेसे दुःख, फलेगा?

(८)

जननीर दुख देखे' पराण फाटे।
कि काण्ड करेन तिनि,—स्नानेर घाटे॥
(ओगो) एसे तुमि जाओ देखे,
कि शेल विंधेछे बुके,
तोमार विहने माता कि मथा कोटे।
पराण फाटिया जाय,
शुनि मुखे हाय हाय,
कपाल भाङ्गिया गेल,—आघत चोटे॥
पोड़ा काठ अङ्ग खानि,
चोखेते पड़ेछे छानि,
देखिते न पान किछु,—घाटे ओ वाटे।
जननीर दुख देखि पराण फाटे॥

(८)

होते प्राण विदीर्ण दुःख जननीका लखकर।
करतीं वे जो काण्ड नहानेवाले तटपर॥
आओ हे! जाओ न निरख कर,
सेल विंधा कैसा उर भीतर,
भाल कूटतीं कैसी हुईं विरहसे कातर।
प्राणोंमें पड़ रही दरारें,
सुनकर उनकी करुण पुकारें,
है कपाल फट गया बहुत चोटें खा-खाकर॥
दग्ध-काष्ठ सम तन सब काला,
हुआ, पड़ा आँखोंमें जाला,
घाट-बाटपर उन्हें न कुछ होता दृग्गोचर।
होते प्राण विदीर्ण दुःख जननीका लखकर॥

(६)

'हा निमाइ ! यो निमाइ!' सदाइ मुखे ।
दर दर आँखि-धार झरिछे वुके ॥
जाहाके देखेन पथे,
सानुनये विधिमते,
जतने पूछेन तुमि आछ त सुखे ।
जे आसे नदीया धामे,
मा भावेन तोमा जाने,
कत कथा जिज्ञासेन निकटे डेके' ॥
केदे जे आकुल हन,
कखन वा अचेतन,
कखन देखेन तोमा आड़ाले थेके ।
'हा निराइ ! यो निमाइ !' सदाइ मुखे ॥

(६)

'हाय निमाई ! अरे निमाई !!' सदा अधरपर।
आँखोंसे धारा झरती छाती-पर झर-झर॥
जिसे देखतीं पथपर आते,
सविधि उसीसे विनय दिखाते,
तुमतो सुखसे हो न ?—पूछतीं घुमा-घुमाकर।
नदियामें आते जो भी जन,
तुम्हें जानते वे—माँके मन,
कितनी उनसे बात पूछतीं निकट बुलाकर॥
रो-रोकर आकुल हो जातीं,
कभी चेतना तक खो जाती,
कभी ओटमें खड़ी देखतीं तुमको छिपकर।
'हाय निमाई ! अरे निमाई !!' सदा अधरपर॥

(१०)

कखनओं वा जडवत् आकाट् ह'ये।
आर।र मुखेर पाने देखेन चे'ये ॥
लाजे म'रे जाइ आमि,
सरे ना मुखेते वाणी,
कि ह'लो भाविया आमि,—मरि जे भये।
मायेर मुखेर पाने,
चाहिते ना पारि केने,
(जेन) शत अपराधी आमि,—ताँहार पाये ॥
आमारि कपाल दोषे,
छेड़े' तुमि गृह वासे,
दिले गो ए दुखराशि,—दुखिनी माये!
प्रति पले काँदे माता बुकेर घा'ये ॥

(१०)

कभी कभी निर्जीव बनी जड़ताको धारे।
मेरे मुखकी ओर लगा टकटकी निहारें॥
मैं हूँ लज्जामें गड़ जाती,
मुखसे कोई बात न आती,
सोच हुआ क्या ?—मरती मैं उस डर के मारे।
किस कारण मैयाके आनन,
ओर न उठते मेरे लोचन,
शतापराधिनि मैं उनके पद-मन्दिर द्वारे॥
दोष भाग्यका मेरे सारा,
तुमने घरसे कसा किनारा,
दुःख-राशि में दबा गये माँ प्राण, दुखारे।
प्रतिपल मैया हृदय व्रणोंसे चीखें मारे॥

(११)

निशिते चमकि उठि तोमारे डाके।
बिछानार चारि-धार खुँजिते थाके॥
निमाइ निमाइ ब'ले,
डाके तोमा' आँखि जले,
कखनओ वा चूल छिंड़े' वदन ढाके।
कोलेर भितरे मोरे,
टानिया आदर करे,
फेलेछ आमारे तुमि बड़ विपाके॥
कि करि, कोथाय जाइ,
कि क'रे बुझाइ माय,
कि क'रे दुःखिनी मा'र पराण थाके?
(तिनि) निशिते चमकि उठि तोमारे डाके॥

(११)

उठकर चौंक, निशामें देतीं तुमको हाँकें।
चारों ओर विछावनके निज खोजें, झाँकें।।
'निमू ! निमाई रे !!' कह-कहकर,
तुम्हें बुलातीं आँसू भर-भर,
खींच खींच कर केश कभी मुख अपना ढाँके।
मुझको निज गोदीके भीतर,
खींच लाड़ करतीं हैं सादर,
डाल गये तुम मुझे बीच भारी विपदाके।।
क्या मैं करूँ, कहां पर जाऊँ,
कैसे मयाको समझाऊँ,
क्या करनेसे बचें प्राण इन दुखिया माँके।।
उठकर चौंक, निशामें देतीं तुमको हाँकें।।

(१२)

दिन रात द्वारे वसि' सुधान सवे।
"आमार निमाइ घरे आसिवे कवे?"
जा'के ता'के एइ कथा,
कि दारुण मनव्यथा,
तुमि सुधु बुझिले ना,—कि ह'वे तवे?
पाखिटि देखिले माता,
कहेन तोमार कथा,
तरुलता गला धरि' काँदेन जवे—
पराण छिंड़िया जाय,
शुनि मुखे हाय हाय,
मने भावि कवे मोर मरण ह'वे?
दिन रात द्वारे वसि' काँदेन जवे॥

[१२]

पूछा करतीं सबसे निशि-दिन बैठ द्वारपर,
'आजायेगा लौट निमाई मेरा कब घर ?'
जो भी हो उससे यही कथा,
कितनी दारुण यह मनोव्यथा,
क्या होगा तब ?—समझा इसे नहीं तुमने भर।
माँ लखकर कोई नभचारी,
कहने लगतीं कथा तुम्हारी,
रोतीं जब तरुको, लतिकाको गले लगाकर—
होते प्राण विखण्डित कट-कट,
हाय-हायकी सुन मुख से रट,
मन में मैं सोचती भला छूटेगा कब तन।
जब निशि-वासर बैठ द्वार पर करतीं क्रन्दन॥

(१३)

स्वपने हेरिये तोमा' काँदेन कत ।
जत वा काँदेन माता,—डाकेन तत ॥
पाशे आमि थाकि शुये,
कोलेते टानिये निये,
विनाइया वले माता यातना जत ।
आमारे भाविया छेले,
चुमो खा'न प्राण खुले',
कि क'रे सहि गो आमि,—वेदना शत ॥
वलिते ना पारि ताहा,
हृदि माझे आछे जाहा,
दुःखराशि दिले तुमि,—मातारे जत ।
(तिनि) स्वपने हेरिये तोमा काँदेन कत ॥

(१३)

देख स्वपनमें तुम्हें कलप कितना चिल्लातीं !
क्रन्दन करतीं जितना, उतनी बार बुलातीं ॥
मुझे पासमें सोयी पाकर,
खींच, कलेजेसे चिपटाकर,
ब्यौरेवार यातना माता मुझे सुनातीं।
मनमें बेटा मुझे समझकर,
लेती मेरा चुम्बन जी भर,
शत-शत व्यथा सहूँगी कैसे ?—समझ न पातीं ॥
मुझसे तो वह कही न जाती,
जिस ज्वालासे जलती छाती,
दुःख राशि दी जितनी माँको, सही न जाती।
देख स्वप्नमें तुम्हें कलप कितना चिल्लातीं ॥

(१४)

घुमेर घोरेते तिनि कतइ वकेन।
तोमार गुणेर कथा कतइ वलेन॥
कभु वा घुमेर घोरे,
उठिते प'ड़ेन द्वारे,
ओछोट् खाइया माता,—दुयारे वसन।
किछु ना वलेन मोरे,
वुक भासे आँखि लोरे,
आँधारे आँधारे गिये दुयार खोलेन॥
पिछु पिछु आमि धाइ,
किछु न भाविया पाइ,
ए घोर निशाय केन एमन करेन?
घुमेर घोरेते तिनि कतइ वकेन॥

(१४)

भरी नींदमें वे कितना बकती-चिल्लातीं।
एक तुम्हारे गुणकी गाथा रटती जातीं॥
कभी भरी निद्रामें उठकर,
गिर पड़ती हैं भवन-द्वार पर,
खा पछाड़, माँ बैठ द्वारपर ही हैं जातीं।
मुझसे भी कुछ बात न कहतीं,
छाती आँसूसे तर रहती,
द्वार-कपाट अँधेरे में जा अलग हटातीं॥
पीछे-पीछे दौड़ी जाऊँ,
कुछ भी नहीं सोच मैं पाऊँ,
ऐसी घोर निशामें करतीं क्यों इस भाँती?
भरी नींदमें वे कितना बकतीं-चिल्लातीं॥

(१५)

भोर ह'ले देखि मा'र कपाल फूला।
लेगेछे आघात सब आड्गुल गुला॥
बुक फेटे जाय देखे,
अधीर तोमार शोके,
असाड़ सरब-अङ्ग आपन भुला।
कि सेवा करिते पारि,
माथा कूटे केंदे मरि,
ए मोर पाषाण देह जाउक चुला'।
केन ना मरण ह'ल,
ए काण्ड देखिते र'ल,
काँदि आर लइ मा'र चरण-धूला।
(आमि) भोर ह'ले देखि मा'र कपाल फूला॥

(१५)

माँके मस्तकपर उठ भोर देखती सूजन।
कोई उँगली नहीं लगी हो जिसपर चोट न॥
फटती छाती देख-देखकर,
उन्हें तुम्हारे दुख से कातर,
निजकी सुध-बुध रही नहीं, सब अङ्ग अचेतन।
कैसे सेवा मकती है बन,
कूटूँ भाल, मरूँ कर क्रन्दन,
पड़े भाड़में मेरा यह पाषाण-घटित तन॥
क्यों न कालने ली घड़ियाँ गिन,
बची देखनेको जो यह दिन,
माँका पद-रज लेती, करती रहती क्रन्दन।
माँके मस्तक पर उठ भोर देखती सूजन॥

(१६)

तुमि यदि आमि हओ बुझिवे तवे।
आमार दुःखेर कथा शुनिवे जवे॥
दिये गेछ सेवा-भार,
तोमार ए बुड़ा मा'र,
कि सेवा करिले ताँर,—ए दुःख जा'बे?
तुमि ता विचार करे,
देखा दिये बल मोरे,
ताइ करि' काटाइव जीवन भवे॥
तोमार मायेर सेवा,
ए भाग्य पाय केवा?
अभागिनी बलि' बुझि दियेछ भेवे।
तुमि यदि आमि हओ बुझिवे तवे॥

(१६)

समझ सकोगे मुझको तुम केवल 'मैं' बनकर।
जब हो मेरी दुःख-कथा तुमको श्रुति-गोचर॥
सेवा-भार गये हो देकर,
अपनी वृद्धा माँका मुझपर,
करूँ कौन सेवा उनकी, जो ले यह दुख हर ?
तुमही कर विचार अब इसपर,
मुझे बता दो दर्शन दे कर,
भवमें जीवनको काटूँगी वैसा ही कर॥
तव जननी-सेवाका अवसर,
मिले, भाग्य ऐसा हो क्योंकर,
जान अभागिन मुझको है यह दिया मनन कर।
समझ सकोगे मुझको तुम केवल 'मैं' बनकर॥

(१७)

निज सेवा अधिकार दिले ना तुमि ।
मात्-सेवा करिते जे ना पारि आमि ॥
का'रे वा यतन करि,
कि यातना हरि हरि !
दिनान्ते ना दिते पारि अन्न पानि ।
राते ताँर घूम नाइ,
सर्व्व अङ्गे माखे छाइ,
माथाय धूलार राशि,—मुखे नाइ वाणी ॥
राजराणी भिखारिणी,
तोमा तरे पागलिनी,
कि क'रे यतन करि,—आमि कि जानि ।
(मोरे) निज सेवा अधिकार दिले ना तुमि ॥

(१७)

प्रिय ! सौंपा तुमने निज-सेवा-अधिकार नहीं।
जननीकी सेवा लगती मुझसे पार नहीं॥
किस भाँति सेविका यत्न करे,
किंभूत यातना हरे ! हरे !
संध्या तक पाती दे जल-कण, आहार नहीं।
नहीं यामिनोमें सो पातीं,
सकल अङ्गमें राख रमातीं,
रज-राशि भरा सिर, मुखसे शब्दोच्चार नहीं॥
पटरानी भिक्षुणी गई बन,
तव कारण छाया पागलपन,
क्या यत्न करूँ, कर पाती ठीक विचार नहीं।
प्रिय ! सौंपा तुमने निज-सेवा-अधिकार नहीं॥

(१८)

यदि धुला झाड़ि' दिये नाइ ते वलि ।
'निमाइ ! निमाइ !' करि काँदेन फुलि' ॥

तेलेर वाटीटि निये,
काछे यदि जाइ धेये,
तथा ह'ते कोथा जा'न,—उठिया चलि ।

छिन्न वसन खानि,
ना छाड़ेन कभु तिनि,
जप तप पूजा पाठ,—गेछेन भुलि' ॥

तव नाम करि सार,
वहेन जीवन भार.
शयने स्वपने शुधु 'निमाइ' वुलि ।
जखन तखन तिनि काँदेन फुलि' ॥

(१८)

यदि मैं रज झाड़ स्नानकी बात चलायी।
फूट-फूटकर रोतीं, रटतीं 'निमू ! निमाई !!'
तेल-कटोरी करमें लेकर,
जाती हूँ समीप यदि सत्वर,
उठकर जातीं चली जगहपर बिना बतायी।
तनके वसन फटे हैं सारे,
कभी न जाते किंतु उतारे,
जप-तप, पूजा-पाठ, सभीपर विस्मृति छायी॥
नाम तुम्हारा सार मान कर,
वहन कर रहीं जीवन दूभर,
सोते, स्वप्न देखते, बस, रट लगी 'निमाई'।
जभी देखती तभी बिलखती रहतीं माई॥

(१९)

जे घरे शुइते तुमि—केउ खोलेनि' ।
विछाना, बालिश, खाट,—केउ तोलेनि ॥
गंभीर निशाय उठि',
सेइ घरे जा'न छुटि,
उँकि मेरे' कि देखेन,—आमि कि जानि ।
आमार त घूम नाइ,
सकलि' देखिते पाइ,
जननीर दशा देखि,—काँदे पराणि ॥
चरण धरिया मा'र,
बलि आमि बार बार,
"शोबार घरेते' मागो ! जेयो ना तुमि ।"
जे घरे शुइते तुमि,—केउ खोले नि ॥

(१९)

जिस घरमें तुम सोते, उसे न खोला जाता।
बिस्तर, तकिया और खाट कोई न उठाता॥
घोर निशामें माता उठकर,
जाती हैं भागती उसी घर,
क्या देखतीं छिपी-सी, मेरी समझ न आता।
मेरी आँखोंमें नींद कहाँ,
देखा करती सब जहाँ-तहाँ,
दशा देख माँकी प्राणोंको रोना आता॥
माँके पद-पङ्कज पकड़ उभय,
मैं करती बारम्बार विनय,—
"शयन-कक्षकी ओर नहीं तुम जाना माता!"
जिस घरमें तुम सोते, उसे न खोला जाता॥

(२०)

भोरे उठे धेये जा'न गोयाला वाड़ी।
गोयाली के दिते चा'न पाटेर शाड़ी॥
"क्षीर, सर, ननी दिवे,
निमाइ आमार खावे,"
वलिते वलिते वसे धरिया धारि।
गोयालिनी कें'दे' मरे,
जननी के कोले ध'रे,
गृहेते लइया आसे नयने वारि॥
वुझिले न दुःख तुमि,
कि आर वलिव आमि,
सकलि वुझिते पारे अवला नारी।
(मा) भोरे उठे धेये जा'न गोयाला वाड़ी॥

(२०)

प्रातः उठकर दौड़ी जातीं ग्वालेके घर।
चाह लिये, ग्वालिनको दूँ साड़ी पाटंबर॥
'देना मक्खन, दूध, मलाई,
खायेगा मम लाल निमाई'
कहते-कहते जातीं बैठ दलान पकड़कर।
दे रही ग्वालिनी प्राण बिलख,
जननीको निज बाँहोंमें रख,
घरले आती, आँखोंसे जल बहता झर-झर॥
तुमने दुःख नहीं समझा यह,
अधिक भला क्या सकती मैं कह,
अबला नारी रहती सब कुछ समझ-समझकर।
प्रातः उठकर दौड़ी जातीं ग्वालेके घर॥

(२१)

कोथा ह'ते शाक तुलि' देन राँधिते।
बलेन "निमाइ मोर चेयेछे खेते"॥
तुमि भालवास जाहा,
जेखाने देखेन ताहा,
यतने आनिया माता,—थोन घरेते।
तुमि जे गृहेते नाइ,
से ज्ञान ताँहार नाइ,
रन्धन करिते जा'न हरिष चिते॥
सकलि बुझिते पारि,
देखे, शुने, कँदे मरि'
भूले जा'न मा आमार,—किसे कि दिते।
कोथा ह'ते शाक तुलि' देन राँधिते॥

[२१]

शाक कहींसे रंधनार्थ देतीं हैं लाकर।
कहतीं—'रहा निमाई खानेकी इच्छा कर'॥
तुमको जो प्रिय लगती, भाती,
उसको देख जहाँ भी पातीं,
यत्नपूर्वक लाकर माता रखतीं घर पर।
चले गए तुम छोड़ कहीं घर,
बात न यह रहती स्मृति-पट पर
रंधन करने जातीं हर्ष हृदयमें भर-भर॥
सब कुछ मैं समझूँ मन-ही-मन,
देखूँ, सुनूँ, मरूँ कर क्रन्दन,
क्या डालें किसमें, माँकी जाती यह सुधि हर।
शाक कहींसे रंधनार्थ देती हैं लाकर॥

(२२)

राँधा वाड़ा पड़े थाके उनान-पाड़े।
तोमाय डाकिते जान गङ्गार धारे॥
घाटे घाटे छुटे जा'न,
कण्ठगत हय प्राण,
प्रखर रोदेर तापे पिपासा वाड़े।
घाटे बाटे पान जा'रे,
काँदिया सु'धान तारे,
"कोथाय निमाइ मोर? बले दे ओरे!"
सकले धरिया माय,
वाड़ी पाने निये जाय,
दूर ह'ते देखे मोर नयन झरे।
राँधा वाड़ा प'ड़े थाके उनान-पाड़े॥

(२२)

राँधा भोजन चूल्हेके ही पड़ा सहारे।
तुम्हें बुलाने जाती हैं सुरसरी किनारे॥
भागी जातीं घाटोंपर सब,
लग जाता प्राणोंको अब-तब,
बढ़ती भीषण प्यास प्रखर आतपके मारे।
जिसको पातीं घाट-बाटपर,
उससे ही पूछतीं बिलखकर,
'कहाँ निमाई मेरा ?—मुझको दे बतला रे !'
जननीको वे सभी पकड़कर,
लिये हुए आते हैं घरपर,
देख दूरसे अश्रु बहाते नयन हमारे।
राँधा भोजन चूल्हेके ही पड़ा सहारे॥

(२३)

गृहेते जखन माता आसेन फिरे।
आधमरा देखि ताँरे, माथार किरे॥
कत लोक सङ्गे आसे,
ध'रे मा'के आसे पासे,
बुक भासे सकलेर आँखिर नीरे।
कि सुख नदीया-वासे,
देखे जाओ तुमि एसे,
देखाव' हृदयागुन हृदय चिरे'॥
जे दुख हृदय धरि'
मुखे ता बलिते नारि,
बूक चिरे' देखाइव,—आसिले फिरे।
एक बार एस फिरे,—माथार किरे॥

(२३)

मैया हैं जिस समय लौटकर घरपर आती।
सिरकी है सौगंध, अधमरी उनको पाती॥
आते माँके संग बहुत जन,
अगल-बगलसे बन अवलंबन,
आँखोंके जलसे सबकी तर रहती छाती।
क्या सुख नदियामें रहनेपर,
इसे देख जाओ तुम आकर,
चीर दिखाऊँ हृदय, लपट जो नित्य जलाती॥
जो है दुःख हृदयमें छाया,
वह मुखसे जाता न बताया,
चीर दिखाऊँगी वापस आनेपर छाती।
एक बार फिर आओ, सिरकी शपथ दिलाती॥

(२४)

रोज आसे मार काछे मालिनी मासी ।
बिनाइये कहे तव गुणेर राशि ।।
प्राणेर सखीरे देखि,
झरे मा'र दुटि आँखि,
दुहुँ जने कत काँदे घरेते वसि' ।
लुकाये आमाके घरे,
मनागुने दोहे झुरे,
सकलि' देखिते पाय तोमार दासी ।।
घरेते रेखेछे तारे,
एइ सव देखिवारे,
केन वा दिले ना तार गलाय फाँसि ।
रोज आसे मा'र काछे मालिनी मासी ।

(२४)

नित्य मालिनी मौसी मैयाके ढिग आती।
ब्योरेवार तुम्हारे गुणकी कथा सुनातीं॥
अपनी प्राण-सखीको पाके,
झरते दोनों लोचन माँके,
बैठी घरमें उभय बिलखतीं, अश्रु बहातीं।
कहीं छिपाकर मुझे भवनमें,
दोनों भुनतीं मनस्तपनमें,
टक-पथमें तव दासीके सब बातें आतीं॥
क्या गये उसे इसलिए त्याग,
देखे यह सब दिन-रात जाग,
क्यों दे गये न फाँसी उसको, वह सुख पाती।
नित्य मालिनी मौसी मैयाके ढिग आतीं॥

(२५)

(मासी) त्यजिये संसार गृह रहे एखाने।
कि भावे बुझान मा'के केह ना जाने॥
दिन जाय, रात्रि आसे,
बसिया मातार पाशे,
चुपि चुपि कत कथा बलेन काने।
माता देन माथा नाड़ा,
जेन पागलिनी पारा,
मासिमा जड़ा'ये धरि' बाँचान प्राणे॥
दुइ जने गला धरि,
भूमे जा'न गड़ागड़ि,
छूटे जाइ काछे आमि,—मन ना माने।
संसार त्यजिये मासी रहे एखाने॥

(२५)

अपने घरको छोड़ यहीं मौसी रह जातीं।
पता नहीं क्या कह-कह कर माँको समझातीं॥
दिन जाता, फिर रजनी आती,
माँ-समीप सब समय बितातीं,
चुप-चुप कानोंमें कितनी ही कथा सुनातीं।
माँ सिरसे झकझोरा भरतीं,
जैसे कोई पगली करतो,
मौसी माँको पकड़-जकड़कर प्राण बचातीं॥
उभय परस्पर गले लिपट कर,
लोट तड़पती हैं पृथ्वी पर,
मन न मानता, मैं जाती ढिग कदम बढ़ाती।
अपने घरको छोड़ यहीं मौसी रह जातीं॥

(२६)

पण्डित श्रीवास आसे राते खुंजिते।
चुपि चुपि ईशानेरे कहे डाकिते॥
ईशान दाँड़ाये द्वारे,
हातेते इशारा करे,
बुझिया मासिमा तबु नारे आसिते।
जननीके खाओयाइवे,
तबेते घरेते जावे,
पण्डित रहेन वसि,—दूर पथेते॥
जा' किछु आहार दिये,
मासिमा शोंयान गिये,
बिछानाय जननीके,—जे कोन मते।
पण्डित श्रीवास आसे राते खुंजिते॥

(२६)

निशा समय पण्डित श्रीनिवास खोजते आते।
'चुपके लो ईशान ! बुला'—यह बात सिखाते॥
खड़ा द्वार ईशान बिचारा,
हाथोंसे ही करे इशारा,
मौसी लेतीं समझ, न फिरभी बनता आते।
जननीको भोजन करवाकर,
तभी जायँगी वे अपने घर,
पथमें हटकर दूर बैठ पण्डित हैं जाते॥
ज्यों-त्यों कुछ भी खिला-पिलाकर,
मौसी ले जातीं शय्यापर,
शयन कराने किसी भाँति माँको समझाते।
निशा समय पण्डित श्रीवास खोजते आते॥

(२७)

पण्डित श्रीवास आर कहे ना कथा।

(ताँर) वदने प्रकाश पाय मनेर व्यथा॥

ए वृद्ध वयसे ताँर,

भेंगेछे बुकेर हाड़,

(तिनि) तोमार कारणे दुःख पान अयथा।

छिले तुमि प्राण जाँर,

दिये ताँके दुखभार,

कि सुख पाइले तुमि,—आमार माथा॥

बुड़ा बुड़ी दोहे मरे,

तोमार विरह-ज्वरे,

शुकाइले देहतरु,—रहे कि लता?

पण्डित श्रीवास आर कहे ना कथा॥

(२७)

करते कोई बात न अब श्रीवास विप्रवर।
मनकी व्यथा लिखी रहती है उनके मुखपर॥
उनकी वृद्धावस्थामें इस,
गया अस्थि-पञ्जर उरका पिस,
व्यर्थ दुःख वे पाते हैं तुमको ही लेकर।
तुम थे प्राण और जो काया,
दुःख उन्हींपर अमित ढहाया,
पाया तुमने कौन भला सुख, क्या मेरा सर?
बूढ़ा-बूढ़ीको यमके घर,
लिए जा रहा तव वियोग-ज्वर,
ठहरेगी क्या लता, सूख तरुके जानेपर?
करते कोई बात न अब श्रीवास विप्रवर॥

(२८)

ना करेन देखा तिनि जननी साथे।
दु:खे पाछे माता, नोड़ा मारेन माथे॥
उथलिया दु:ख उठे,
पराणे आगुन छुटे,
श्रीवास-अङ्गन-कथा आसे मनेते।
जे खाने नाचिते तुमि,
एवे ताहा मरुभूमि,
सेखानेते आर केह पारे न जेते॥
नाम ना करिते पारे,
फिरे चेये केंदे मरे,
हयेछे विषम दाय,—घाटेते जेते।
ना करेन देखा तिनि जननी साथे॥

(२८)

नहीं कभी वे मिलते हैं मैयासे आकर।
कहीं दुःखमें फोड़ नहीं लें लोढ़ेसे सर॥
दुःख रहा उठ उफन-उफन कर,
रहा हुताशन प्राणोंमें भर,
श्रीवासाङ्गणकी बातें आतीं स्मृति-पटपर।
जिस थलपर करते थे नर्तन,
वह अब रहा मरुस्थल है बन,
अब कोई उस ओर नहीं जा पाता, उस घर॥
कर पाते न नाम-संकीर्तन,
फिर-फिर देख मरें कर क्रन्दन,
आती विषम विपत्ति घाटपर भी जानेपर।
नहीं कभी वे मिलते हैं मैयासे आकर॥

(२६)

पण्डितेर दुइ भाइ श्रीपति निधि।
बहिछेन शिरोपरे दुख-वारिधि॥
तेयागिये गृहवास,
विदेशेते बारमास,
नारी पुत्र प्राणे मरे,—ये कोन विधि।
तोमार बिहने ताँरा,
उनुमत दिशेहारा,
तोमार गुणेर ओगो नाहि अवधि॥
घर बोला जत छिल,
सवाइ विरागी ह'ल,
केंदे मरे कुलनारी,—हायरे विधि।
पण्डितेर दुइ भाइ श्रीपति निधि॥

(२६)

श्रीपति, निधि—ये पण्डितके दो भाई होते।
दोनों ही हैं दुःख-वारिनिधि सिरपर ढोते॥
अपने घरपर रहना तजकर,
मास बारहों रहते बाहर,
कैसी विधि यह ?—नारी-पुत्र प्राण हैं खोते।
तव वियोग, यह उनका खाका,—
पागल, भ्रमित, न ज्ञान दिशाका,
अवधि न आती तव गुण-गणकी माला पोते॥
गृहस्थाश्रमी थे जितने जन,
वे सब बैठे बैरागी बन,
हाय विधे! कुल-ललना मरती रोते-रोते।
श्रीपति, निधि,—ये पण्डित के दो भाई होते॥

(३०)

तोमार जे मेसो ह'न चन्द्र ठाकुर।
एकेवारे उनुमत फेलिये कापुड़ ॥
सङ्गे ताँरे निये गेले,
कि जानि कि देखाइले,
वृद्ध ब्राह्मण ह'ल, एकि शोकातुर।
दूरे गेछे स्नानाहार,
पागलेर व्यवहार,
भेवे भेवे मासीमार निद्रा ह'ल दूर ॥
मेसोंके पागल क'रे,
नारीवुके छुरि मेरे,
नदीयार चाँद ! तुमि ह'ले वाहादुर।
तोमार जे मेसो ह'न चन्द्र ठाकुर ॥

(३०)

नाम चन्द्र ठाकुर जिनका, मौसिया तुम्हारे।
फेंक दिये पूरे पागल हो कपड़े सारे॥
उन्हें सङ्ग, अपने ले जाकर,
जाने कैसा दिया रङ्ग भर,
शोकाकुल हो गये वृद्ध ब्राह्मण बेचारे।
छूटा खाना और नहाना,
हुआ पागलोंका-सा बाना,
नींद गयी मौसीजीकी चिंताके मारे॥
मौसाको उन्मत्त बनाके,
अबलाके उर सेल धँसाके,
तुम नदिया के चाँद, बने हो वीर-जुझारे।
नाम चन्द्र ठाकुर जिनका, मौसिया तुम्हारे॥

(३१)

शुनेछि सकल कथा मातार मुखे।
बलितेछि एके एके बढ़इ दुःखे॥
पितार अवर्त्तमाने,
तोमारे जे पुत्रज्ञाने,
पालिलेन स्नेहभरे करिया वुके।
ताँर प्रति एत दया!
बलिहारी तव माया!
ताँर तुलनाय आमि,—आछि त सुखे॥
बलिवार नय कथा,
प्राणे जे दियेछ व्यथा,
जावेना—जावार नय,—युगे वा युगे।
शुनेछि ए सब कथा मातार मुखे॥

[३१]

सुनी कथा है मैंने माँके मुखसे सारी।
बड़े दुःखसे उन्हें कह रही बारी-बारी॥
पितृ-चरणके उठ जानेपर,
अपना तुमको पुत्र जानकर,
पाला-पोसा लेकर स्नेह हृदयमें भारी।
ऐसी अनुकंपा उनके प्रति,
तब मायाकी बलिहारी अति,
उनकी तुलनामें तो मैं हूँ सुखिया नारी॥
कहनेकी यह बात न कोई,
प्राणों में वह पीड़ा बोई,
युग-युग तक जिसकी न सूखनेवाली क्यारी।
सुनी कथा है मैंने माँके मुखसे सारी॥

(३२)

निज जने एत दुःख जे दिते पारे।
(से) अनायासे परजने पराणे मारे॥
आमि तव परजन,
तुमि मम प्राणधन,
ताइ बेंधे रेखे गेले,—ए कारागारे।
हात पा बेंधेछ तुमि,
उठिते ना पारि आमि,
जननीर सेवा भार दियेछ मोरे॥
निज जने दिये ज्वाला,
कि ह'बे तोमार भाला,
कि धरम कर तुमि,—पूछि वा का'रे!
निज जने एत दुःख,—के दिते पारे!

(३२)

इतना अधिक दुखी निज जनको जो सकते कर।
अनायास पर प्राणोंको भी वे सकते हर॥
मते तुम्हारे मैं हूँ परजन,
मेरे तो तुम किंतु प्राणधन,
पटक गये इस कारागृहमें तभी बाँधकर।
हाथ-पैरको बाँध दिया है,
उठना मेरा कठिन किया है,
दिया भार जननी-सेवाका तथा शीसपर।
निज जनको देकर यह ज्वाला,
कौन पियोगे मंगल-प्याला,
पूछूं किससे कि किस धर्म पर हुए अग्रसर?
कौन स्वजनको इतना दुखी भला सकते कर!!

(३३)

ईशानेर दशा देखि' पराणे मरि।
कोन मते आछे से जे पराण धरि' ॥
जलविन्दु नाहि खाय,
कोथाओ नाहिक जाय,
पाछु पाछु फिरे मा'र देह आगोरि।
आमि यदि एका थाकि,
पुरनारी देय डाकि,
कि काज दियेछ तारे,—कि दया मरि !!
माता किछु खेले परे,
तबे से आहार करे,
राते शुये डाके सदा,—"हे गौरहरि !"
ईशानेर दशा देखे' पराणे मरि ॥

(३३)

प्राण, देख ईशान दशा, जानेको तत्पर।
किसी तरह वह रहा स्व-जीवनको धारण कर॥
लेता जल भी कण-मात्र नहीं,
है जाता इधर न उधर कहीं,
पीछे-पीछे रहता दृष्टि दिये माँ-तनपर।
मैं यदि हुई अकेले घरपर,
ले आता पुर-नारि बुलाकर,
सौंपा कैसा काम देव! बलि गयी दयापर॥
खा लेती हैं जब कुछ माता,
तभी अन्न उसके मुख जाता,
निशिमें सोते समय 'गौर हरि' की धुन मुखपर।
प्राण, देख ईशान दशा, जानेको तत्पर॥

(३४)

(से जे) मानुष करे'छे तोमा,—कोले करिया।
ना हेरे नदियाचाँदे,—मरे काँदिया॥
ना देखाय आँखिवारि,
ना जाय काहारओ वाड़ी,
काहाके वले ना दुख,—रहे सहिया।
मुख तुले' नाहि चाय,
करे ना से 'हाय हाय',
मायेर चरण पाने रहे चाहिया॥
कथा क'ले मुख तुले',
वुक भासे आँखि-जले,
अवनत मुखे जाय,—काज करिया।
(से जे) मानुष करेछे तोमा,—कोले करिया॥

(३४)

तुम्हें पालकर बड़ा किया गोदीमें रखकर।
देख न नदिया-विधुको वह मर रहा बिलखकर॥
आंसू तक अपना न दिखाता,
नहीं किसीके भी घर जाता,
दुख न किसीसे कहता सहता भीतर-भीतर।
वदन उठाकर नहीं निहारे,
हाय-हाय वह नहीं पुकारे,
दृष्टि दिए रहता माताके ही चरणोंपर॥
बात कहो, तब वदन उठाता,
वक्ष अश्रुसे तर हो जाता,
काम सभी करता रहता, आनन अवनत पर।
तुम्हें पालकर बड़ा किया गोदीमें रखकर॥

(३५)

अवधूत नित्यानन्द,—पागल केंदे ।
ना देखे मायेर मुख,—तोमार खेदे ॥
सारा नदीयाय शुनि,
ताँहार शोकेर ध्वनि.
दुखेर काहिनी-भरा,—सोनार नदे' ।
सदानन्द नित्यानन्द,
तव शोके निरानन्द,
किवा दोष करिलेन तोमार पदे ॥
मोरा शत अपराधी,
नित्यानन्दे ए कि विधि,
अक्रोध परमानन्दे मारिले वेंधे ।
अवधूत नित्यानन्द,—पागल केंदे ॥

(३५)

नित्यानन्द विरागी होते रोकर पागल।
नहीं देखते तव दुखसे माँका मुख-मण्डल॥
पड़ रही सुनायी नदिया भर,
ध्वनि उनकी शोकभरी कातर,
रही स्वर्ण-नवद्वीप भूमिमें दुःख-कथा चल।
सदा आनन्दी नित्यानन्द,
हुए तव शोक विगत-आनन्द,
किया तुम्हारे पद-कमलोंके प्रति क्या अनभल ?
मैं शत अपराधोंकी निधान,
पर उनके प्रति यह क्या विधान,
अक्रोधी परमानन्दीका मर्म दिया दल।
नित्यानन्द विरागी होते रोकर पागल॥

(३६)

मायेर खवर ल'न,—लोकेर मुखे ।
बनवासी हयेछेन,—मनेर दुखे ॥
दुटी प्राण एक छिले,
से कथा सबाइ बोले,
कि करि' मारिले शेल ताँहार बुके ?
तुमि ताँर छिले प्राण,
दिले भाल प्रतिदान,
बादी ह'ले पागलेर मनेर सुखे ॥
छिलेन प्राणेर भाइ,
मुखे ताँर हासि नाइ,
शतधारा बहितेछे सदाइ आँखें ।
(तिनि) बनवासी ह'येछेन,—मनेर दुखे ॥

(३६)

माँका लेते हाल जान लोगोंसे सुनकर।
मनोवेदनाको लेकर हो गये विपिन-चर॥

प्राण एक ही था, थे दो तन,
बात यही कहते हैं सब जन,
फिर क्यों भोंक दिया उनके उरमें त्रिशूल खर ?

तुम जिनके जीवन-प्राण रहे,
दे भला उन्हें प्रतिदान रहे,
पागलका अन्तः-सुख-घट रख दिया उलट कर॥

थी जहाँ प्राण-बंधुता जुड़ी,
अब वहाँ अधरसे हँसी उड़ी,
सदा नयनसे धारा बहती शतधा झर-झर।
मनोवेदनाको लेकर हो गये विपिनचर॥

(३७)

दामोदर गदाधर आकुल शोके।
दुखेर सागरे भासे नदे'र लोके॥
मुरारिर हाहाकारे,
पशुपाखी केंदे मरे,
शोकेते विह्वल सवे,—के कारे देखे।
पुत्र कन्या काछे गेले,
अमनि उठेन ज्वले,
काण्डाकाण्ड नाइ ज्ञान,—कुकथा मुखे॥
छेड़े गिया नदे' भुमि,
कि काज करिले तुमि,
बुझिले ना तुमि ताहा,—मरि जे दुखे।
दुखेर सागरे भासे नदे'र लोके॥

(३७)

शोकाकुल अतिशय दामोदर और गदाधर।
नदियाके जन डूब रहे दुःखोदधि भीतर॥
हाहाकार मुरारी करते,
रो-रोकर पशु-पक्षी मरते,
शोकाकुल सब लोग, कौन दृग् डाले किसपर?
निकट सुता-सुत जो आते चल,
सभी लोग मानों उठते जल,
कह देते अपशब्द उचित-अनुचित न सोचकर॥
जो गये छोड़ करके नदिया,
यह कैसा तुमने काम किया,
समझे दुःख नहीं वह, जिससे रही आज मर।
नदियाके जन डूब रहे दुःखोदधि भीतर॥

(३८)

श्रीधरेर दशा देखे,—जाइ जे मरें'।
कि काज ए छार मोर जीवन ध'रे ?
हाथे लाठि गुड़ि-गुड़ि,
तोमार दुयार धरि,
"पण्डित निमाइ" वलि',—कत फुकारे !
मने नाहि देन ठाँइ,
तुमि जे वाड़ीते नाइ,
चीत्कार करिया डाके पथेर धारे ॥
उथले मायेर शोक,
देखे काँदे शत लोक,
आछाड़ि' आछाड़ि' माता—भूमेते पड़े।
(ओगो) कि काज ए छार मोर जीवन ध'रे ॥

(३८)

देख दशा श्रीधरकी आती बन प्राणोंपर।
राख हुए मम जीवनको क्या होगा रखकर ?

लाठी-हुक्का लिये हुए कर,
खड़े तुम्हारे दरवाजेपर

बोल 'निमाई पण्डित' रोते फफक-फफककर।

बात नहीं यह धँसती मनमें,
अब न तुम्हारा वास भवनमें,

रो-रो देते हाँक किनारे खड़े सड़कपर।

माँका विपुल शोक-उद्वेलन,
देख लोग शत करते क्रन्दन,

गिर-गिर पड़तीं मैया भूमि पछाड़ें खाकर।
राख हुए मम जीवनको क्या होगा रखकर ?

(३९)

तोमार शोकेते पेये हृदये व्यथा।
आमार सखीरा दुखे कहे ना कथा॥
कारो मुखे नाइ हासि,
आमि त सरवनाशी,
आमारि', तरेते तुमि,—गेले गो कोथा?
काञ्चना केवल आसे,
तोमार ए पोड़ा वासे,
ता'र मुखे शुनि तव गुणेर कथा॥
हासि नाइ ता'र मुखे,
मरे से आमार दुखे,
कि फल राखिया मोर जीवन वृथा?
आमार सखीरा दुखे कहे ना कथा॥

(३९)

लिये हृदयमें व्यथा शोकमें मग्न तुम्हारे।
मेरी सखियाँ बात न करतीं दुखके मारे॥
मुख न किसीके गयी हँसी रह,
मेरे कारण सर्वनाश यह,
हाय! हेतु मेरे ही, प्रिय! तुम कहाँ सिधारे?
एक काञ्चना है आती बस,
तवगृह, जिसे चुकी ज्वाला ग्रस,
उसके मुखसे सुनूँ गुणोंकी कथा तुम्हारे॥
आती हँसी न उसके मुखपर,
रही दुःखसे वह मेरे मर,
चेरी यह किसलिए वृथा निज जीवन धारे?
मेरी सखियाँ बात न करतीं दुखके मारे॥

(४०)

तोमार भकत आछे,—जीयन्ते मरे'।
ए केमन भालवासा,—पागल क'रे॥
केह वा पथेते छोटे,
केह घरे माथा कोटे,
केह काँदे दिवानिशि,—वेदना भरे।
के का'रे सान्त्वना करे,
के जाय काहार घरे,
के देखे काहारे ओगो,—के का'रे धरे?
सवाइ पागल-पारा,
दुखेते आपनहारा,
के का'र खवर राखे,—आछे जे म'रे।
ए केमन भालवासा,—पागल क'रे॥

(४०)

भक्त तुम्हारे जीवित ही हैं यथा गये मर।
कैसा प्रेम भला, देता सबको पागल कर॥
कोई दौड़ रहा है पथ पर,
कोई घरमें फोड़ रहा सर,
कोई रोता भरा वेदनासे निशि-वासर।
अहो कौन किसको समझाये,
और कौन किसके घर जाये,
किसको पकड़े कौन, कौन रक्खे दृक् किसपर?
सब पर छाया अति पागलपन,
दुःखमें विसर गया अपनापन,
किसकी रक्खे कौन खबर जब स्वयं चुका मर।
कैसा प्रेम भला, देता सबको पागल कर॥

(४१)

आमि त आछि गो भाल ता'देर चेये।
मार काछे घरे आछि,—घरेर मेये॥
कुलेर वधू जे ता'रा,
हइये पागल पारा,
घरवाड़ी छेड़े' पथे जेतेछे धेये।
कुलेर वधूर नाइ
सरमेर लेश छाइ,
तोमार आसार आशे रयेछे चेये॥
तोमार गुणेर कथा,
वले ता'रा जथा तथा,
कुलनारी अलङ्कार, सरम खेये।
आमि त आछि गो भाल तादे'र चेये॥

(४१)

पाती हूँ निज दशा भली उनसे तुलना कर।
गृहिणी हूँ, रहती माँके ढिग गृहके भीतर॥
कुल वधुएँ सारी की सारी,
हुईं परम पागल बेचारी,
छोड़-छोड़ घर-बार दौड़ती फिरती पथपर।
यद्यपि सभी कुलीन वधूटी,
किन्तु लाज-छाया भी छूटी,
देख रहीं पथ तवागमनकी आशा लेकर॥
विपुल तुम्हारा गुण-गुण-संग्रह,
जहाँ-तहाँ जातीं लगने कह,
कुल-नारी-आभूषण—लज्जाको दफनाकर।
पाती हूँ निज दशा भली उनसे तुलना कर॥

(४२)

मा तोमार माथा कोटे से सब देखे'।
आमार कपाल भाल,—देखि ना चोखे ॥
काने शुने' मरि आमि,
से सब दुखेर वाणी,
देखिले गो मरित्ताम,—मनेर दुखे !
तोमार विरह-ज्वाला,
सबे करे झालापाला,
कि आगुन ज्वालिले हे,—ता'देर बुके ?
पुड़ाइये नदे' भूमि,
कि सुख पाइले तुमि,
धरम कि ह'त ना गो,—नदे'य थेके' ?
मा तोमार माथा कोटे से सब देखे' ॥

(४२)

वे सब बातें देख फोड़तीं तब जननी सर
मेरा भाग्य भला न दृष्टि जा पाती उनपर ॥
सुन भसने लगती प्राण तरी,
उन सबकी वाणी दुःख भरी,
देख अगर लेती, जाती मनके दुखसे मर।
तव वियोग-पावकमें दारुन,
सब कराहते, सभी रहे भुन,
उनके उरमें कैसी दी प्रज्वलित अग्नि कर ?
नवद्वीप क्षेत्र इस भाँति जला,
सुख मिला कौनसा तुम्हें भला,
नहीं धर्म पालन होता क्या नदिया रह कर ?
सब बातें देख फोड़तीं तब जननी सर ॥

(४३)

आमार दुखेर कथा,—भुलेछि आमि ।
तुमि त सुखेते आछ,—पराण-स्वामी ?
नदीयावासीर दुख,
भरा प्राण भरा वुक,
देखिले ना, बुझिले ना,—केन कि जानि ।
तुमि वड़ दयामय,
सकले केन जे कय,
सर्व्व जीवे सम दया,—कि करे मानि ?
नदे' वासी जीव नय,
इहा कि सम्भव हय,
प्रकाश करिये वल तोमार वाणी ।
आमार दुखेर कथा,—भुलेछि आमि ॥

(४३)

अब स्व-दुःखकी बात नहीं आती स्मृति-पटपर।
तुम तो हो सुख सहित न हे मेरे प्राणेश्वर ?
नदियावासी जनका दुखड़ा,
उनके उर प्राणोंमें उमड़ा,
पता न क्यों समझे न उसे, दृक् पड़े न उसपर।
हो परम दयाके तुम निधान,
सब करते क्यों ऐसा बखान,
दया समान सभी जीवोंपर मानूँ क्योंकर ?
नदियावासी जीव नहीं हैं,
यह भी संभव बात कहीं है,
तुम्हीं प्रकाशित करो तथ्य निज मुखसे कह कर।
अब स्व-दुःखकी बात नहीं आती स्मृति-पटपर ॥

(४४)

नदीयार पशु पाखी नीरवे काँदे !
नदीयावासीरे तुमि,—फेलेछ फाँदे ॥
नाहि से गङ्गार शोभा,
मुनिजन - मन - लोभा,
गाहे ना विहगकुल मधुर नादे ।
बहे न तरङ्गकुल,
लोक सब शोकाकुल,
विनाइया काँदे घाटे विविध छाँदे ॥
आमि जे तोमार दासी,
पोड़ामुखी सर्व्वनाशी,
आमारि तरेते तुमि,—छाड़िले नदे' ।
नदीयार पशु पाखी नीरवे काँदे ॥

(४४)

नदियाके पशु-पक्षी करते नीरव क्रन्दन ।
फँसा गये फंदेमें तुम नदियावासी-जन ॥
रह न गयी गङ्गाकी छवि वह,
मुनि-जन-मन जिसमें जाता बह,
नहीं मधुर स्वरसे विहङ्गकुल करता गायन ।
बहती न तरङ्गें मचल-मचल,
सब लोग हो रहे शोक-विकल,
घाट-घाटपर रोते कर-कर बहु विधि वर्णन,
मैं ही वह किंकरी तुम्हारी,
दग्धमुखी, सर्वस्व-कुठारी,
छोड़ दिया नदिया तुमने मेरे ही कारन ।
नदियाके पशु-पक्षी करते नीरव क्रन्दन ॥

(४५)

ए सब देखिया आमि मनेते भावि।
तोमार उपरे मोर किसेर दावि?
तुमि हे जगतनाथ,
सकलि तोमार हात,
अधिकार आछे तव,—दिवि ओ भुवि।
सुख दुख इच्छा तव,
लीलास्थल एइ भव,
जगतेर जीव तव,—खेलार छवि॥
जीवरे नाचाओ तुमि,
अबला नारी जे आमि,
ना बुझे तोमार मर्म्म,—देव ओ देवी।
तोमार उपरे मोर किसेर दावि?

(४५)

हूँ विचारती मनमें मैं यह सब कुछ लखकर।
क्या दावा है नाथ ! भला अब मेरा तुमपर ?
तुम हो स्वामी जगके सारे,
करतलगत सर्वस्व तुम्हारे,
है छाया अधिकार तुम्हारा नभपर, भूपर।
सुख-दुख दोनों ही इच्छा तव,
लीला क्षेत्र तुम्हारा यह भव,
जग-जीवोंको बना खिलौना रहे खेल कर॥
सृष्टि नचाते हो तुम सारी,
मैं तो केवल अबला नारी,
नहीं जानते मर्म तुम्हारा सुर-नारी-नर।
क्या दावा है नाथ ! भला, अब मेरा तुमपर ?

(४६)

दिये सुख पुनः तुमि,—लइले काड़ि !
मनेते रहिला मोर,—ए दुख भारि ॥
यदि ना करिते दया,
ह'त ना ए मोह माया,
दासी बले, नियेछिले करुणा करि' ।
एत कथा ताइ बलि,
माया घोरे भूलि भूलि',
अपराध लइयो ना,—आमि जे नारी ॥
दासीपद दिये छिले,
तुमिइ ता' केड़े निले,
जाहा कर ताइ भाल,—बुझिते पारि ।
दिये सुख पुनः तुमि,—लइले काड़ि ॥

(४६)

छीन लिया सुखको फिर तुमने, पहले देकर।
यही एक गुरु-दुःख रह गया मनके भीतर॥
यदि न दयाका खुलता सोता,
इतना माया-मोह न होता,
दासी कह जो अपनाया था करुणासे भर।
इतनी बात इसीसे कहती,
मायाके प्रवाहमें वहती,
मैं नारी, करना विचार मत अपराधोंपर॥
था दासी-पद जो मुझे दिया,
तुमने ही उसको छीन लिया,
समझ रही हूँ—जो तुम करो, वही मङ्गल-वर।
छीन लिया सुखको—फिर तुमने, पहले देकर॥

(४७)

आपन दुखेर आर,—क'व न कथा।
मनेर माझारे तुमि,—पा'वे गो व्यथा ॥
मरि यदि भाल तबु,
बलिब ना तोमा' कभु,
हृदि-वेदनार भार,—काँदिया वृथा।
कि ह'वे आमार सुख,
मने तव दिये दुख,
जानिना आमि जे नाथ,—कुटिल प्रथा ॥
जानि सुधु दासी आमि,
तुमि जे प्राणेर स्वामि,
तोमार पराणे दिव,—केमने व्यथा ?
(आमि) आपन दुखेर आर,—क'व ना कथा ॥

(४७)

अब नहीं कहूँगी अपने दुःखकी कभी कथा।
चर्चासे उसकी मनमें होगी तुम्हें व्यथा॥
होगा भला, अगर जाऊँ मर,
नहीं कहूँगी तुम्हें कभी पर,
निज-हृदय-वेदना-भार—बिलखना हुआ वृथा।
भला, कौन लूँगी मैं सुख पा,
दुःखसे हृदय तुम्हारा तड़पा,
मैं नहीं जानती प्राणेश्वर! यह कुटिल प्रथा॥
मैं दासी बस, इतना मालुम,
तथा प्राणपति हो मेरे तुम,
तव प्राणोंको दूँगी मैं कैसे भला व्यथा?
अब नहीं कहूँगी अपने दुखकी कभी कथा॥

(४८)

चरण धरिया करि,—एइ मिनति ।
कि क'रे भजिव तोमा,—देखाओ रीति ॥
लये'छ कठोर व्रत,
पाइतेछ क्लेश कत,
आमि त घरेते आछि,—सुखेते अति ।
सब कथा मने ह'ले,
हृदये आगुन ज्वले,
कि करि भजन करि—दाओ सुमति ॥
सेवा-विधि बले' दिये,
सुशीतल कर हिये,
आमि गो घरेते आछि,—तुम जे यति ।
चरण धरिया करि,—एइ मिनति ॥

(४८)

पकड़ तुम्हारे चरण-कमल, विनती करती यह।
कैसे तुमको भजूँ, दिखा दो मुझे रीति वह॥
व्रत कठोर तुमने अपनाया,
कठिन क्लेशको गले लगाया,
मैं तो घरमें अतिशय सुखके साथ रही रह।
जब सब बातें मनमें आतीं,
दहक हृदयमें ज्वाला जाती,
किस प्रकारसे भजन करूँ, दो मुझे सुमति वह॥
सेवाका विधान समझाकर,
हृदय बीच दो शीतलता भर,
तुम धारण यति-वेष किये, मैं रही भवन रह।
पकड़ तुम्हारे चरण-कमल विनती करती यह॥

(४६)

किसेर संसार मोर,—तोमारे छाड़ि' ?
केन तुमि छेड़े' गेले,—ए घर-बाड़ी ?
कि करे' बुझाइ मन,
ताइ भावि अनुखन,
तोमार मायेर सेवा,—कि करे' करि ?
जे ज्वाला दियेछ तुमि,
कि आर बलिब आमि,
काँदि आर मुछि मोर—नयनबारि ॥
तुमि ह'ले देशान्तरी,
आमि जे पराणे मरि,
का'र काछे बलि दुख—आमि जे नारी ?
किसेर संसार मोर,—तोमारे छाड़ि' ?

(४९)

क्या मेरा लौकिक प्रपञ्च अब बिना तुम्हारे ?
तजकर यह घर-बार भला किसलिए सिधारे ?
किस प्रकार मनको समझाऊँ,
यही बात बस, प्रतिपल ध्याऊँ,
किस विधि सेवा-कर्म करूँ तब मांके सारे ?
तुमने है जो आग लगायी,
जाती वह मुझसे न बतायी,
अश्रु बहाना और पोंछना काम हमारे ॥
तुमने तो प्रवास अपनाया,
मेरे प्राणोंपर बन आया,
किसके आगे कहूँ दुःख अबला-तन धारे ?
क्या मेरा लौकिक प्रपञ्च अब बिना तुम्हारे ?

(५०)

मनेर खेदेते आमि,—कत जे बलि।
अरण्ये रोदन मोर,—काल जे कलि॥
कलि अवतार बले,
तोमार भकत-दले,
तराइले जीव तुमि,—चरणे दलि'।
काँदाइये निज जन,
शिखा'ले हे कि साधन,
जननी फेलिया कोथा गेले हे चलि?
मारिये शिरेते वाज,
साधिले आपन काज,
(आर) कि आछे तोमार मने—बलगो खुलि'।
मनेर खेदेते आमि,—कत जे बलि॥

(५०)

मैं कहती बात अनेक खेदसे मन जो विह्वल ।
सब अरण्य-रोदन मेरा, छाया कलियुग खल ॥

तुम्हीं हो कलियुगमें अवतार,
तुम्हारे कहते भक्त पुकार,
तारा तुमने जीवोंको कलिको पदसे दल ।
रुला-रुलाकर स्वीय भक्तगण,
करते किस साधनका शिक्षण,
छोड़ अनाथा जननीको हे ? कहां दिये चल ?
भक्त पर वज्र उनके सिर मारा,
अपना तो पर काज सँवारा,
मनमें जो हो और कहो, खोले अन्तस्तल ।
मैं कहती बात अनेक खेदसे मन जो विह्वल ॥

(५१)

काँदिले काटिले तुमि,—देखा दिवे ना ।
जानि आमि,—तबु मोर,—मन बुझे ना ॥
पाषाणे बेंधेछि बुक,
ना देखा'व कालामुख,
गृहे वसि' तव नाम—करि साधना ।
कठोर भजन रीति,
शिखाओ यतने अति,
ए दासीर प्रति नाथ ! करि करुणा ॥
तोमार चरण-मधु,
आमार साधन शुधु,
पिव आर पियाइव,—भकत जना' ।
काँदिले काटिले तुमि,—देखा दिवे ना ॥

(५१)

नहीं मिलेगा रोने-धोनेसे तव दर्शन।
इसे समझती, नहीं मानता फिर भी मम मन॥
बाँध लिया छातीपर पत्थर,
मुख न दिखाऊँगी तिमिराकर,
घरमें रह कर करूँ नामका तव मैं साधन।
दुष्कर कठिन भजनकी पद्धति,
मुझे सिखा दो यत्न सहित अति,
कर करुणा इस दासीके ऊपर जीवन-धन !!
पावन मधु तव मञ्जु चरनका,
एक लक्ष्य मेरे साधनका,
पीऊँ तथा पिलाऊँगी भक्तोंको भर मन।
नहीं मिलेगा रोने-धोनेसे तव दर्शन॥

(५२)

अनुरागी ह'ये यदि डाकिते पारि ।
आसिते हइबे नाथ,—देखिते नारी ॥
लइते पारि गो यदि,
तव नाम निरवधि,
ए विपद जा'बे मोर,—विपद-हारि !
कर नाथ ! शक्ति दान
जाक् मोर अभिमान,
जनम दुखिनी आमि—दासी तोमारि ॥
अभिमाने हृदि-भरा,
कि साध्य भजन करा,
दूर कर अभिमान,—दरपहारि !
अनुरागी ह'ये जा'ते डाकिते पारि ॥

(५२)

सकुँ बुला अनुरागमयी सचमुच यदि बनकर।
मुझे देखने आना ही होगा प्राणेश्वर !!
अगर नचा पाऊँ रसनापर,
नाम तुम्हारा नित्य निरंतर,
निश्चय लय होगी विपत्ति यह हे विपत्ति-हर !
हे नाथ ! शक्तिका दान करो,
मेरा सारा अभिमान हरो,
जन्म दुःखिनी दासी हूँ मैं तव सेवा-पर ॥
अभिमान हृदयमें भरा गहन,
वश नहीं वने भजनोपासन,
दूर करो अभिमान सभी हे दर्प-दलनकर !
सकूँ बुला अनुरागमयी सचमुच फिर बनकर ॥

(५३)

थाकिले कि अनुराग,—तुमि गो जे'ते ।
अनुरागी ह'ले—तुमि दरश' दिते ॥
नाहि गाढ़ अनुराग,
ए मोर दगध भाग,
ताइ तुमि चले' गेले विषाद चिते ।
नाइ प्रीति भालबासा,
कि क'रे चरण आशा—
करि आमि दयामय,—तोमारे पे'ते ॥
शिखाओ करुणा क'रे,
काँदिते चरण ध'रे,
लइते तोमार नाम,—खे'ते ओ शु'ते ।
थाकिले से अनुराग,—तुमि कि जे'ते ॥

(५३)

होता यदि अनुराग, न जाते तुम जीवन-धन !
होती मैं अनुरागमयी तुम देते दर्शन ॥
जो मुझमें अनुराग न गाढ़ा,
भाग्य इसीसे मेरा डाढ़ा,
इसीलिए तो चले गये तुम हो विषण्ण-मन ।
नहीं प्रीति-पूरित अन्तस्तल,
कैसे आशा करूँ चरण-तल,
पानेकी मैं भला, तुम्हारे देव ! दयाघन ?!
मुझे सिखाओ करुणा कर यह—
क्रन्दन करना चरणोंको गह,
लेना नाम तुम्हारा सोते, करते भोजन ।
होता यदि अनुराग, न जाते तुम जीवन-धन !!

(५४)

आर न बलिव किछु,—आमि जे दासी ।
पराण भरिया तोमा,—भाल न वासि ॥
मनदुखे चले' गेले,
दासीरे चरणे ठेले',
ताइ काँदि निरजने दिवस निशि ।
जननी दुखेते भासे,
आमारि' कपाल दोषे,
आमि काल शत्रु ताँर,—सरवनासी ॥
तुमि त सकल जा'न,
दया करि लह प्राण,
तोमार विरह-ज्वाला,—ए दुख नाशि ।
आर ना बलिव किछु,—आमि जे दासी ॥

(५४)

नहीं कहूँगी बात और मैं अधम किंकरी।
भरी न छलछल तव पद-रतिसे प्राण-गागरी॥
चले गये मनमें दुख पाकर,
दासीको पदसे ठुकराकर,
विजन तभी तो जाती रोते दिन-विभावरी।
मग्न हो रही दुखमें जननी,
मेरे ही दुर्दिनकी करनी,
रिपु काल-रूप मैं उनकी सर्व-विनाश-करी॥
तुमसे तो कुछ भी नहीं छिपा,
ले लो प्राणोंको, करो कृपा,
तव वियोग-ज्वाला-नाशक बस, यही निर्झरी।
नहीं कहूँगी बात और मैं अधम किंकरी॥

(५५)

शेष कथा वले' दिये,—नीरवे र'व ।
तव कथा भिन्न आन,—कथा ना क'व ॥
तव नाम करि' सार,
वहिव ए देह-भार,
तोमार घरेते वसि',—महिमा गा'व ।
तोमार मायेर सेवा,
पूजा मोर देवी देवा,
तोमार चरणधूलि,—खूटिया खा'व ॥
जत दिन र'बे देह,
देखिते ना पा'बे केह,
तव नाम सुधा-पाने,—मत्त ह'व ।
तव कथा भिन्न आन,—कथा ना क'व ॥

(५५)

बची बातको कहकर बस, चुप हो जाऊँगी।
बात तुम्हारी तज न अन्य मुँहपर लाऊँगी ॥
सार बना तव दिव्य नामको,
ढोऊँगी इस अस्थि-चामको,
रहकर भवन तुम्हारे तव महिमा गाऊँगी।
तव माँकी सेवामें तन-मन,
देना, मम देवी-देवार्चन,
रेणु तुम्हारे चरणोंकी खन-खन खाऊँगी ॥
जितने दिवस शरीर रहेगा,
कोई उसे न देख सकेगा,
पीकर नाम-सुधा तव पागल बन जाऊँगी।
बात तुम्हारी तज न अन्य मुँहपर लाऊँगी ॥

(५६)

तोमार ए घरबाड़ी,—वैकुण्ठ मम ।
नदे' धाम वृन्दावन,—वरज सम ॥
तोमार जनमभूमि,
अपार प्रेमेर खनि,
नव नव सुषमाय,—कान्ति कम ।
तोमार शयन-घर,
से मोर ठाकुर-घर,
तोमार पादुका निति,—करिब नम ॥
धरि' भिखारिणी साज,
तोमार दासीर काज,
करिबे ए दासी तव,—हर हे तम ।
तोमार ए घरबाड़ी,—वैकुण्ठ मम ॥

(५६)

यह घर बार तुम्हारा है वैकुण्ठ-लोक मम।
नदिया-ग्राम धाम-वृन्दावन, गोकुल-व्रज सम ॥
भूमि जहाँ तुम हुए अवतरित,
खान प्रेमकी सीमा-विरहित,
नव-नव सुषमामय, सकान्ति, कमनीय, मनोरम।
जो है शयनागार तुम्हारा,
बना वही मम ठाकुर-द्वारा,
नित्य करूँगी नमन पादुकाको तव सनियम ॥
भिखारिणीका धारे बाना,
जो दासी-कर्त्तव्य बखाना,
उन्हें करेगी दासी तव यह हे ! हर लो तम।
यह घरबार तुम्हारा है वैकुण्ठ-लोक मम ॥

(५७)

तुमि त थाकिते पार,—नदीया छाडि'।
आमि जे छाड़िते नारि,—तोमार वाड़ी ॥
नदीयार चाँद नाइ,
आँधार ह'येछे ताइ,
आँधारे आँधारे डुवि',—तोमारे ढुँड़ि।
तोमार घरेर माझे,
आमार पातान' सेजे,
राते गिये देखि तोमा,—करिये चुरि ॥
काँदिया काँदिया जाइ,
यदि वा दरश पाइ,
आमि जे तोमारि नाथ,—अबला नारी।
आमि जे छाड़िते नारि,—तोमार वाड़ी ॥

(५७)

देखो ! तुम तो रह सकते हो नदिया तज कर।
तज सकती हूँ भला तुम्हारा मैं कैसे घर ?
गया सुधाकर छिप नदियाका,
तम छाया अतएव अमाका,
तुम्हें ढूँढ़ती अन्धकारमें डुबकी खाकर।
प्रभो ! तुम्हारे घरके भीतर,
अपने हाथ रची शय्यापर,
तुम्हें देखती हूँ छिपकर रजनीमें जाकर॥
जाती करती - करती क्रन्दन,
मिल ही जाय कदाचित् दर्शन,
अबला नारी दीन तुम्हारी मैं प्राणेश्वर !
तज सकती हूँ भला तुम्हारा मैं कैसे घर ?

(५८)

(केन) नदीयार अवतार,—तोमारे बले ?

(ओगो) नदे'वासी काँदाइया,—कथाय गेले ?

जेखाने सेखाने थाक,

नदे'वासी मने रेख,

भूलिबे ना तोमा, ता'रा,—प्राणे मरिले ॥

नदीयार समाचार,

क'ब कि तोमारे आर,

बलिते सकल कथा,—पराण ज्वले ॥

नदीया-निवासी जत,

ह'येछे मरार मत,

दुखेर पाथारे तुमि,—रेखे'छ फेले'

(केन) नदीयार अवतार,—तोमारे बले ?

(५८)

नदियाका अवतार तुम्हें कहते हैं क्यों जन ?
कहाँ गये नदियावासी जनको दे क्रन्दन ?
तुम चाहे जहाँ निवास करो,
नदिया-जनको निज चित्त धरो,
वे भूलेंगे तुम्हें न होकर भी गत-जीवन।
नदियापुरका समाचार सब,
क्या तो तम्हें सुनाऊँ मैं अब,
जलने लगते प्राण, करूँ जो सबका वर्णन ॥
नदियावासी जन बेचारे,
मृतक समान हुए हैं सारे,
दुःख सिन्धुमें तुमने सबका किया विसर्जन।
नदियाका अवतार तुम्हें कहते हैं क्यों जन ?

(५६)

करुणार अवतार,—नाम तोमार ।
(ओगो) करुणा करिया लह प्राण आमार ॥
कि काज जीवने मम,
ओहे प्राणप्रियतम !
नाहि जे जीवने आशा,—तोमाके पा'बार
दयार सागर तुमि,
करुणार पात्री आमि,
कृपा करि'प्राण लह,—ओहे प्राणधार !
सकलि ल'येछ तुमि,
आछे मात्र प्राणखानि,
तोमार चरणे ताहा,—दिनू उपहार ।
करुणार अवतार,—नाम तोमार ॥

(५६)

करुणाके अवतार तुम्हारा नाम विदित है।
ले लो मेरे प्राण, यही करुणापेक्षित है॥
भला, काम क्या जीनेसे मम,
हे मेरे प्राणोंके प्रियतम!
पुनर्मिलनकी तुमसे जब आशा वर्जित है।
तुम हो उदार करुणा-अर्णव,
पात्री मैं हूँ करुणाकी तव,
कृपया प्राणाधार! प्राण ले लो, मम हित है॥
ले ली हैं तुमने वस्तु सभी,
पर प्राण मात्र हैं बचे अभी,
चरणोंमें उपहार तुम्हारे यह अर्पित है।
करुणाके अवतार तुम्हारा नाम विदित है॥

(६०)

चरणदासी जे प्रभु !—आमि तोमारि' ।
दासीत्व काड़िया निले,—किवा विचारि' ?
कि सुखे संसारे थाकि,
कि हेतु पराण राखि,
किसेर आशाय आमि,—जीवन धरि ?
तोमार मायेर तरे,
आमारे राखिले घरे,
कि करे' यतन क'रे,—सेवा जे करि ?
प्राणे मोर प्राण नाइ,
कि करि, कोथाय जाइ,
अबला सरला आमि,—कुलेर नारी ।
चरणदासी जे प्रभु !—आमि तोमारि' ॥

(६०)

प्रभो ! तुम्हारी दासी मैं पद-सेवा-लीना।
क्या विचारकर तुमने यह दासी-पद छीना ?
रहूँ जगतमें किस सुखके हित,
रखूँ प्राण किस हेतु सुरक्षित,
किस आशाको लेकर होगा मेरा जीना ?
करनेको सँभाल मैयाकी,
रखनेकी घर मुझे कृपा की
पटु सेवा-विधि सीखूँ हो किस यत्नाधीना ?
रही न प्राणोंमें चेतनता,
क्या करूँ, कहाँ जाऊँ न पता,
कुल-नारी हूँ सरल-स्वभावा, मैं बल-हीना।
प्रभो ! तुम्हारी दासी मैं पद-सेवा-लीना ॥

(६१)

आर कि बलिव तोमा,—हे गुणनिधि !
कि पापे ए ताप मोरे दिल गो बिधि ?
नदीयार राजा तुमि,
राजार घरणी आमि,
मनेर दुखेर मोर,—नाहि अवधि ।
पेये निधि हारा'लाम,
बुझिया ना बुझिलाम,
असीम अतल मोर,—दुख-पयोधि ॥
जत जत दिन जाय,
तत बाढ़े हाय हाय,
(ओगो) बल तुमि दुख जाय,—मरिले यदि ?
आर कि बलिव तोमा,—हे' गुणनिधि !

(६१)

और बात क्या तुम्हें कहूँ मैं अब हे गुणनिधि !
कौन पाप जो जला रहा मुझको इस विधि विधि ?
नदियाके तुम राजा मानी,
मैं राजाके घरकी रानी,
मनमें मेरे दुःख घटाएँ छायीं निरवधि।
पायी निधि फिर उसे गँवायी,
समझी, फिर भी समझ न पायी,
सीमा-रहित अथाह तथा मम दुःख-पयोदधि ॥
बीते जाते हैं जितने दिन,
हाय हाय उतनी ही अनगिन,
बोलो क्या तर जाऊँगी मरकर दुख-वारिधि।
और बात क्या तुम्हें कहूँ मैं अब हे गुणनिधि !

(६२)

(जेन) जनम जनमान्तरे,—पाइ तोमारे ।
एइ वर दाओ नाथ,—तुमि आमारे ॥
इह जनमेर सुख—
तोमार से हासिमुख,
आर ना हेरिब कभु पराण भ'रे ।
(मोर) ए दुखेर नाहि ओर,
हृदये यातना घोर,
सहितेछे निशि दिशि,—बसिया घरे ॥
इच्छा करे प्राण दिया,
तोमार ए विष्णुप्रिया,
जुड़ाय हृदय-ज्वाला,—जनम तरे ।
(जेन) जनम जनमान्तरे,—पाइ तोमारे ॥

(६२)

पाऊँ तुमको जब-जब जन्मूँ जहाँ-जहाँ पर।
मुझको दो तुम नाथ ! दया कर एक यही वर॥

हँसता हुआ तुम्हारा वह मुख,
था मेरे इस जीवनका सुख,
अब न जिसे मैं देख सकूँगी कभी प्राण भर।
मेरे न दुख का ओर-छोर,
यातना हृदयके बीच घोर,
घरमें बैठ तुम्हारे सहती हूँ निशि-वासर॥

इच्छा है बस, प्राणोंको तज,
विष्णुप्रिया यह तव पदकी रज,
ले आजीवन हृदय-हुताशनको शीतल कर।
पाऊँ तुमको जब-जब जन्मूँ जहाँ-जहाँ पर॥

(६३)

तोमार चरण-तरि,—करि' भरसा ।
बलिव ना कारो मोर दुखेर दशा ॥
तुमि गेछ छाड़ि घर,
आमि जे ह'येछि पर,
(ओगो) डूबे' जे गियाछे मोर,—सकल आशा ।
तोमार सन्नयास-कथा,
दितेछे सबारे व्यथा,
से दुख वर्णिते मोर,—नाहिक भाषा ॥
(बादेर) दुखेर उपरे दु'ख,
जननीर भाङ्गा बुक,—
(आर) आमार नयन जल,—धारा बरिषा ।
बलिव ना कारो मोर दुखेर दशा ॥

(६३)

करके आस-भरोसा तव पदकी नौकाका।
वृत्त कहूँगी किसीको न निज दुःख-दशाका॥
तुमने तो तज आवास दिया,
हो गयी परायी विष्णुप्रिया,
डूब गया तारा मेरी सारी आशाका।
तव संन्यासी-बाना धारण,
सबकी घोर व्यथाका कारण,
अक्षम वह दुख कहनेमें स्वर मम भाषाका।
दुःख-भवन पर दुःख-पताका,
चूर-चूर वक्षस्थल माँका,
नयन-नीरने मेरे रूप धरा वर्षाका।
वृत्त कहूँगी किसीको न निज दुःख-दशाका॥

(६४)

जे देखे से प्राणे मरे,—एइ त ज्वाला ।
आमि कि सहिते पारि, अबला बाला ?
शुनि सदा हाय हाय,
दुखे बुक फेटे जाय,
मा'येर क्रन्दने लागे,—कानेते ताला ।
कि आर तोमारे क'व
ए जनमे दुख स'व,
(मोर) अङ्गेर भूषण तव,—विरह डाला ॥
(आमि) ज्वलि ता'ते क्षति नाइ,
श्रीचरणे दिओ ठाँइ,
प'रेछि यतने आमि,—दुखेर माला ।
जे देखे से प्राणे मरे,—एइ त ज्वाला ॥

(६४)

जो विलोकता, मरने लगता, यह वह ज्वाला।
कैसे मैं सह सकती इसको अबला बाला ?
निशि-दिन हाहाकार श्रवणकर,
छाती फटती है दुखसे भर,
माँका क्रन्दन सुन लगता कानोंमें ताला।
तुमको अब क्या और कहूँगी,
इस जीवन भर दु;ख सहूँगी,
विरह-भेंट तव मम तनका शृङ्गार निराला।
क्या क्षति, यह कभी न आग बुझे,
चरणोंमें देना ठौर मुझे,
पहन यत्नसे रक्खी मैंने दुखकी माला।
जो विलोकता, मरने लगता, यह वह ज्वाला॥

(६५)

आमार साधन-धन,—चरण तव ।
ना पा'न धेयाने जाहा,—विरिञ्चि भव ॥
ए धन हाराये' आमि,
ह'येछि गो पागलिनी,
दुख-ज्वाला सहितेछि,—नित्य नव ।
शेष कथा ब'ले राखि,
अन्तिमे दिओ ना फाँकि,
दासीरे चरणे रेखो,—हे भवधव !
जगतेर नाथ तुमि,
अबला बालिका आमि,
मरम यातना आर,—कत वा क'व ?
आमार साधन-धन,—चरण तव ॥

(६५)

देव ! तुम्हारा चरण-कमल मेरा साधन-धन।
नहीं ध्यानमें जिसको पाते शिव-चतुरानन ॥
खो करके मैं यह अपना धन,
हूँ अब गयी परम पगली बन,
दुःखानन सहती रहती हूँ निरवधि नूतन।
करती अन्तिम बात निवेदन,
अंत समय करना न प्रवञ्चन,
भवधव ! चरणोंमें रखना अनुचरी अकिञ्चन।
तुम स्वामी जगतीके सारी,
मैं अवला बालिका बिचारी,
मर्म व्यथाका कितना और करूँगी वर्णन ?
देव ! तुम्हारा चरण-कमल मेरा साधन-धन ॥

(६६)

(मोरे) शेल करि' रेखे गेले,—मायेर बुके।
(आमि) मुख जे देखा'ते नारि,— मनेर दुखे ॥
कि खेला खेलिले तुमि,
बल देखि गुणमणि,
मायेर दशम दशा,—देख ना चोखे।
दु'टि भाइ च'ले गेले,
दुखिनी जननी फेले,
आमि जे अबला नारी,—केइ वा देखे ?
चाहिले ना मा'र मुख,
बुझिले ना मा'र दुख,
दिले ना गो अन्न पानि,—पियास भुखे।
(ओगो) मुख जे देखाते नारि,—मनेर दुखे।

(६६)

मुझे गये रख माँके उरका शूल बनाकर।
दिखा नहीं सकती मुख भी मनमें दुखसे भर॥

तुमने खेला खेल कौन यह,
गुणमणि ! समझा दो मुझसे कह,

देख न जाओ दशम दशा मैयाकी आकर।
चले गये तुम दोनों भ्राता,
तज बेचारी दुखिया माता,

अबला मैं तो, कौन ध्यान फिर देता माँपर?
नहीं निहारा मैयाका मुख,
और न समझा मैयाका मुख,

क्षुधित तृषितको दिया न भोजन या जल लाकर।
दिखा नहीं सकती मुख भी मनमें दुखसे भर॥

(६७)

सुखे थाक गुणमणि,—एइ वासना।
इहा बिना अन्य मोर,—नाहि कामना ॥
जखन जेखाने थाक,
दासी वले' मने रेख,
चरणेर रज दिते,—जेन भूल ना।
मन्द-भागिनी ब'ले,
वञ्चिता करिले छले,—
सेवा-अधिकारे तव,—केन बल ना?
चरणेर रज दिते,
आन यदि कर चिते,
इहार अधिक आर,—किवा करुणा?
सुखे थाक गुणमणि,—एइ वासना ॥

(६७)

गुणमणि ! सुखसे रहो, यही अब एक वासना।
इसके सिवा नहीं कोई मम अन्य कामना॥
जब जब भी जहाँ रहो, विहरो,
अनुचरी समझ मन-बीच धरो,
तथा न भूलो मुझको पद-रज-भीख डालना।
मन्दभागिनी मुझे निहारा,
किया वञ्चिता छलके द्वारा,
निज सेवाधिकारसे, कारण, कहो क्या बना ?
देनेमें पद-रज भी पावन,
आनाकानी करता यदि मन,
होगी इससे अधिक और क्या करुण यातना ?
गुणमणि ! सुखसे रहो, यही अब एक वासना !

(६८)

ए जनम भरि आमि,—काँदिब हेथा।
मरिले ओ नाहि जाबे,—मरम-व्यथा॥
विधि ह'ल मोरे वाम,
पेये निधि हारा'लाम,
कारेइ वा बलि आमि,—ए दुख कथा।
त्रिजगते नाहि ठाँइ,—
मनेर मानुष नाइ—
कि पापे ए ताप मोरे,—दिला विधाता?
तोमार रमणि व'ले,
जेते नारि नीलाचले,
कि तोमा बलिव आर,— आमार माथा?
(मोर) मरिले ओ नाहि जाबे,—मरम-व्यथा॥

श्रीश्रीविष्णुप्रियावल्लभाय
समर्पणमस्तु॥

(६८)

अब मैं यहाँ रहूँगी रोती सदा जन्म भर।
मरनेपर भी चढ़ा रहेगा मर्म-व्यथा-ज्वर ॥

विधना मेरे बायें आया,
गवाँ दिया जो धन था पाया,
किसे सुनाऊँ दुःख-कहानी यह मैं कहकर।
त्रिभुवनमें मुझे न ठौर कहीं,
समझे मनकी वह व्यक्ति नहीं,
विधिने दी यह जलन मुझे किस पाप-कर्मपर ?
कही तुम्हारी गृहिणी जाती,
अतः न नीलाचल जा पाती,
अब मैं तुमको और कहूँगी क्या—अपना सर ?
मरनेपर भी चढ़ा रहेगा मर्म-व्यथा-ज्वर ॥

श्रीश्रीविष्णुप्रियावल्लभाय

समर्पणमस्तु